वार्षिक रु. ५० मूल्य रु. ८.००

वर्ष ४५ अंक ११ नवम्बर २००७

# विवेक-ज्योति

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)
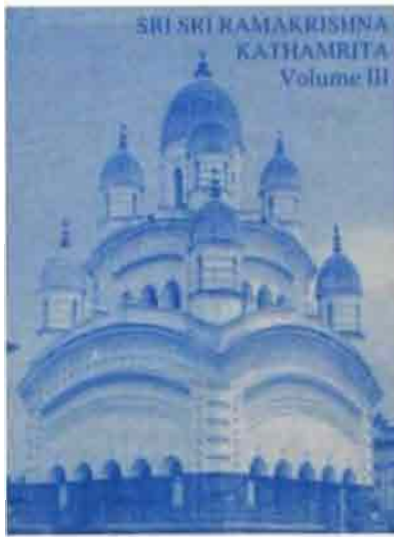
## JUST RELEASED

### *VOLUME III*
### of
### Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

### in English

A verbatim translation of the third volume of original Bengali edition. Available as hardbound copy at *Rs. 150.00 each* (plus postage Rs. 30.00). Available online at: *www.kathamrita.org*

## HINDI SECTION

- **Sri Sri Ramakrishna Kathamrita** — Vol. I to V — Rs. 300 per set (plus postage Rs. 50)

  M. (Mahendra Nath Gupta), a son of the Lord and disciple, elaborated his diaries in five parts of 'Sri Sri Ramakrishna Kathamrita' in Bengali that were first published by Kathamrita Bhawan, Calcutta in the years 1902, 1905, 1908, 1910 and 1932 respectively. This series is a verbatim translation in Hindi of the same.

- **Sri Ma Darshan** — Vol. I to XVI — Rs. 825 per set (plus postage Rs. 115)

  In this series of sixteen volumes Swami Nityatmananda brings the reader in close touch with the life and teachings of the Ramakrishna family: Thakur, the Holy Mother, Swami Vivekananda, M., Swami Shivananda, Swami Abhedananda and others. The series brings forth elucidation of the Upanishads, the Gita, the Bible, the Holy Quran and other scriptures, by M., in accordance with Sri Ramakrishna's line of thought. **This work is a commentary on the Gospel of Sri Ramakrishna by Gospel's author himself.**

## ENGLISH SECTION

| Title | Volumes | Price |
|---|---|---|
| Sri Sri Ramakrishna Kathamrita | Vol. I to III | Rs. 450.00 for all three volumes (plus postage Rs. 60) |
| M., the Apostle & the Evangelist (English version of Sri Ma Darshan) | Vol. I to X | Rs. 900.00 per set (plus postage Rs. 100) |
| Sri Sri RK Kathamrita Centenary Memorial | | Rs. 100.00 (plus postage Rs. 35) |
| Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita | | Rs. 150.00 (plus postage Rs. 35) |
| A Short Life of M. | | Rs. 50.00 (plus postage Rs. 20) |

## BENGALI SECTION

- **Sri Ma Darshan** — Vol. I to XVI — Rs. 650 per set (plus postage Rs. 115)

*All enquiries and payments should be made to:*

**SRI MA TRUST**
579, Sector 18-B, Chandigarh – 160 018 India
**Phone:** 91-172-272 44 60
**email:** SriMaTrust@yahoo.com

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

# विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

**हिन्दी मासिक**


**नवम्बर २००७**

प्रबन्ध-सम्पादक

**स्वामी सत्यरूपानन्द**

सम्पादक

**स्वामी विदेहात्मानन्द**

वर्ष ४५

अंक ११

वार्षिक ५०/- एक प्रति ८/-

५ वर्षों के लिए – रु. २२५/-

**संस्थाओं के लिये वार्षिक ७५/-**

आजीवन (२५ वर्षों के लिए) – रु. १,२००/-

विदेशों में – वार्षिक १५ डॉलर, आजीवन – २०० डॉलर

(हवाई डाक से) १०० डॉलर (समुद्री डाक से)

{सदस्यता-शुल्क की राशि स्पीडपोस्ट मनिआर्डर से भेजें अथवा बैंक-ड्राफ्ट - 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवायें}

**रामकृष्ण मिशन**

**विवेकानन्द आश्रम**

**रायपुर – ४९२ ००१ (छ.ग.)**

दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

०७७१ - २२२५२६९, २२२४११९

(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)


## अनुक्रमणिका




मुद्रक : संयोग आफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : २५४६६०३)

## लेखकों से निवेदन

**पत्रिका के लिये रचना भेजते समय निम्न बातों पर ध्यान दें –**

(१) धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा किसी भी जीवनोपयोगी विषयक रचना को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।

(२) रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिक-से-अधिक चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुई हो। भेजने के पूर्व एक बार स्वयं अवश्य पढ़ लें।

(३) लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दिया जाय।

(४) आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अतः उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिए अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।

(५) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ कविताएँ इतनी संख्या में आती हैं कि उनका प्राप्ति-संवाद देना सम्भव नहीं होता। स्वीकृत होने पर भी उसके प्रकाशन में ६-८ महीने तक लग सकते हैं।

(६) अनुवादित रचनाओं के मूल स्रोत का पूरा विवरण दिया जाय तथा उसकी एक प्रतिलिपि भी संलग्न की जाय।

(७) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त मतों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा।

(८) 'विवेक-ज्योति' के लिये भेजी जा रही रचना यदि इसके पूर्व कहीं अन्यत्र प्रकाशित हो चुकी हो या प्रकाशनार्थ भेजी जा रही हो, तो उसका भी उल्लेख अवश्य करें। वैसे इसमें मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है।

## सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव **स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर** से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – **'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़)** के नाम से बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना नाम, पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नं. आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। उसके बाद अंक रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।

(४) अंक सुरक्षित पाने हेतु प्रति अंक ६/- रुपये अतिरिक्त खर्च कर इसे वी.पी. पोस्ट से मँगाया जा सकता है। यह राशि प्रति माह अंक लेते समय पोस्टमैन को देनी होगी, अतः इसे हमें मत भेजें।

(५) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

## वैराग्य-शतकम्

**कौपीनं शतखण्ड-जर्जरतरं कन्था पुनस्तादृशी**
**नैश्चिन्त्यं निरपेक्षभैक्षमशनं निद्रा श्मशाने वने ।**
**स्वातन्त्र्येण निरङ्कुशं विहरणं स्वान्तं प्रशान्तं सदा**
**स्थैर्यं योगमहोत्सवेऽपि च यदि त्रैलोक्यराज्येण किम् ।।९१।।**

**अन्वय – शत-खण्ड-जर्जर-तरं कौपीनं, पुनः तादृशी कन्था, नैश्चिन्त्यं निरपेक्ष-भैक्षम् अशनं, श्मशाने वने निद्रा, स्वातन्त्र्येण निरङ्कुशं विहरणं, सदा प्रशान्तं स्व-अन्तं अपि च योग-महा-उत्सवे स्थैर्यं यदि, त्रैलोक्य-राज्येण किं ।।**

अर्थ – यदि कौपीन जीर्ण तथा सैकड़ों स्थानों पर फटा हो, उसी प्रकार गुदड़ी भी फटी-पुरानी हो, किसी से अपेक्षा किये बिना निश्चिन्त भाव से प्राप्त भिक्षा का भोजन हो, श्मशान या वन में निद्रा हो, बिना किसी के नियंत्रण के यथेच्छा विचरण हो, यदि चित्त सदा योग-समाधि के महोत्सव में प्रशान्त तथा स्थिर हो; तो उसकी तुलना में तीनों लोकों का राज्य भी तुच्छ है ।

**ब्रह्माण्डं मण्डलीमात्रं किं लोभाय मनस्विनः**
**शफरीस्फुरितेनाब्धिः क्षुब्धो न खलु जायते ।।९२।।**

**अन्वय – मण्डलीमात्रं ब्रह्माण्डं किं मनस्विनः लोभाय? शफरी-स्फुरितेन अब्धिः खलु क्षुब्धः न जायते ।**

अर्थ – यह ब्रह्माण्ड प्रतिबिम्ब के सदृश है । क्या यह विवेकवान व्यक्ति के मन में लोभ पैदा कर सकता है? छोटी-सी शफरी मछली के चलने-फिरने से समुद्र कभी क्षुब्ध नहीं होता ।

**– भर्तृहरि**

# सभी जीव हैं ब्रह्म

(स्वामीजी उनकी उक्ति 'प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्म है' का भावानुवाद)

– १ –

(यमन–कहरवा)

**जीव हैं सभी ब्रह्म अव्यक्त, शुद्ध सच्चित्-आनन्द स्वरूप,**
**दृष्टि कर देते हैं आच्छन्न, जगत् के मिथ्या संज्ञा-रूप ।।**

**हमारे इस जीवन का लक्ष्य, दूर करना यह भ्रम अज्ञान,**
**दमन कर प्रकृति आन्तरिक ब्रह्म, दिव्य हम हैं यह लेना जान ।।**

**हमारा नित्य स्वरूप अखण्ड, मार्ग हैं अभिव्यक्ति के चार,**
**कर्म या ज्ञान भक्ति या योग, खोलते हैं माया का द्वार ।।**

**सहारा लो इनमें से एक, अधिक या सबका सोच-विचार,**
**और हो जाओ बन्धनमुक्त, यही है सब धर्मों का सार ।।**

**चर्च-मन्दिर-मस्जिद या ग्रन्थ, बाह्य पूजा-व्रत अथवा तीर्थ,**
**धर्म के गौड़ अंग-प्रत्यंग, न झगड़ो लेकर इनको व्यर्थ ।।**

– २ –

(वृन्दावनी-सारंग–कहरवा)

**मैं पूर्ण सच्चिदानन्द,**
**चिर ज्योतिर्मय स्वच्छन्द ।।**

**मैं संज्ञाहीन अरूप, हूँ अस्ति-भाति-प्रिय रूप,**
**निस्सीम अनादि अमन्द ।। मैं पूर्ण सच्चिदानन्द ।।**

**मैं अजर अमर, मैं आप्त, हूँ जीव-जगत् में व्याप्त,**
**अज्ञानरहित निर्द्वन्द्व ।। मैं पूर्ण सच्चिदानन्द ।।**

**ना जन्म-मृत्यु, ना व्याधि, ना यश ना कोई उपाधि,**
**भयद्वेषहीन सुखकन्द ।। मैं पूर्ण सच्चिदानन्द ।।**

**तन-मन-केवल आभास, मैं हूँ चेतना प्रकाश,**
**सुर विविध एक मैं छन्द ।। मैं पूर्ण सच्चिदानन्द ।।**

**मैं नित्य निरंजन शुद्ध, हूँ प्रज्ञावान प्रबुद्ध,**
**मैं चिर 'विदेह' निस्पन्द ।। मैं पूर्ण सच्चिदानन्द ।।** – *विदेह*

# समाज, धर्म और देशभक्ति

*स्वामी विवेकानन्द*

अद्वैत आश्रम, मायावती द्वारा प्रकाशित State Society and Socialism नामक संकलन में प्रश्नोत्तर के रूप में स्वामीजी के विचारों का संयोजन किया गया है। प्रस्तुत है उसी पुस्तक के महत्वपूर्ण अंशों का हिन्दी रूपान्तरण। – सं.)

**प्रश्न – समाज की नयी व्यवस्था में धर्म की क्या भूमिका होगी?**

**उत्तर –** सभी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाएँ मनुष्यों की अच्छाई पर टिकती हैं। कोई राष्ट्र इसलिये महान् और अच्छा नहीं होता कि संसद ने यह या वह प्रस्ताव पास कर दिया है, बल्कि इसलिये कि उसके निवासी महान् और अच्छे होते हैं। ... ईसा ने देखा कि विधि-नियम उन्नति का मूल नहीं है, केवल नैतिकता और पवित्रता ही शक्ति हैं।[१५५]

तुम्हारी आध्यात्मिक शक्ति एक तरह से समाज की नयी व्यवस्था के लिये एक आधार-स्वरूप होगी।[१५६]

साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि आध्यात्मिक विचारों की विश्व-विजय से मेरा तात्पर्य जीवनदायी सिद्धान्तों के प्रचार से है, न कि उन सैकड़ों अन्धविश्वासों से, जिन्हें हम सदियों से अपनी छाती से जकड़े रहे हैं। ... मेरी दृष्टि में भारत के लिये कई आपदायें खड़ी हैं। इनमें से दो – एक ओर पर्वत और दूसरी ओर खाई रूप – घोर भौतिकवाद और इसकी प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुए घोर अन्धविश्वास – से अवश्य बचना चाहिये।[१५७]

दुनिया को हम उसी विषय की शिक्षा दे सकते हैं, जिसके लिये वह प्रतीक्षा कर रहा है। यदि आध्यात्मिकता की स्थापना न हुई, तो आगामी पचास वर्षों में सम्पूर्ण पाश्चात्य सभ्यता तहस-नहस हो जायेगी। मानव जाति पर तलवार से शासन करने की चेष्टा करना निराशाजनक और पूर्णत: निरर्थक है। ...

इतने मत-मतान्तरों, विभिन्न दृष्टिकोणों तथा धर्मशास्त्रों के होते हुये भी, यदि कोई सिद्धान्त हमारे सभी सम्प्रदायों का सामान्य आधार है, तो वह है – आत्मा की सर्वशक्तिमत्ता में विश्वास और यह सारे संसार के भाव-प्रवाह को परिवर्तित कर सकता है।[१५८]

सब सामाजिक उथल-पुथल करनेवाले, या कम-से-कम उनके नेता ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं कि उनके सारे साम्यवादी सिद्धान्तों का आधार आध्यात्मिक होना चाहिये, और वह आध्यात्मिक आधार केवल वेदान्त में है। मेरा भाषण सुननेवाले कितने ही नेताओं ने मुझसे कहा है कि नयी व्यवस्था के आधार के रूप में उन्हें वेदान्त की आवश्यकता है।[१५९]

**प्रश्न – मनुष्य की अच्छाई ही सभी व्यवस्थाओं का आधार है। इस विचार को स्पष्ट करने के लिये कोई उदाहरण दीजिये।**

**उत्तर –** जापान को सहसा प्राप्त हुई महानता की कुंजी क्या है? – जापानियों का अपने आप में विश्वास और उनका देशप्रेम। जब तुम्हारे पास ऐसे मनुष्य होंगे, जो भीतर तक एकदम सच्चे और देश के लिये अपना सब कुछ होम कर देने को तैयार हों; जब ऐसे मनुष्य तैयार होंगे, तो भारत हर दृष्टि से महान् हो जायेगा। मनुष्य ही देश को महान् बनाते हैं। देश का अर्थ क्या है? यदि तुम जापानियों की सामाजिक और राजनीतिक नैतिकता को अपना लोगे, तो जापानियों जितने ही महान् हो जाओगे। जापानी अपने देश के लिये सब कुछ बलिदान करने को तैयार हैं और वे एक महान् राष्ट्र बन गये हैं।[१६०]

यूनान या कोई भी अन्य राष्ट्र देशभक्ति को जापानियों के स्तर तक नहीं ले जा सका है। वे देशभक्ति की बातें नहीं करते, अपितु वे देश के लिये सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं। जापान में अब भी ऐसे सामन्त हैं, जिन्होंने साम्राज्य का गठन करने हेतु, बिना एक भी शब्द कहे अपना राज्य छोड़ दिया है और किसानी कर रहे हैं। जापानी युद्ध के दौरान एक भी राष्ट्रद्रोही नहीं मिला। जरा सोच कर देखो![१६१]

जापान में तुम पाओगे कि उन्होंने दूसरों से जो सीखा है, उसे आत्मसात् कर अपना बना लिया है, पचा लिया है। हमने जो विदेशियों से सीखा, उसे हम पचा नहीं पाये। उन्होंने यूरोपवासियों की हर चीज ग्रहण की, पर वे जापानी ही बने रहे, यूरोपीय नहीं बने, पर हमारे यहाँ तो पाश्चात्य ढंग से रहने का एक संक्रामक रोग पैदा हो गया है।[१६२]

संसार ने कभी जापानियों के समान देशभक्त और कलाप्रिय जाति नहीं देखी; और उनकी एक विशेषता यह है कि जब यूरोप और दूसरे देशों में कला, साधारणता गन्दगी के साथ पायी जाती है, जापान में कला का अर्थ होता है कला+परम स्वच्छता। मेरी इच्छा है कि हमारे युवकों में से प्रत्येक अपने जीवन में कम-से-कम एक बार जापान अवश्य जाये।[१६३]
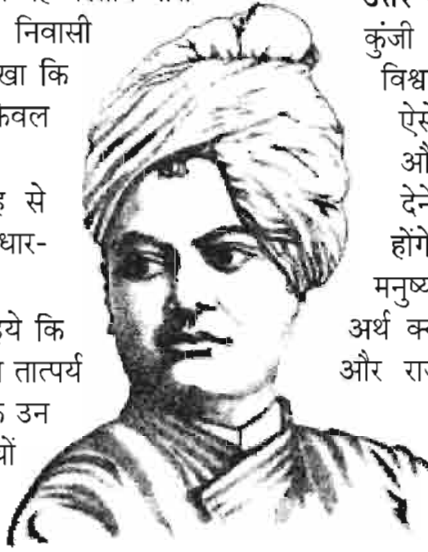
## क्रान्ति और सामाजिक परिवर्तन

**प्रश्न – किस प्रकार के सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता है?**

**उत्तर –** गत शताब्दी में सुधार के लिये जो भी आन्दोलन हुये हैं, उनमें अधिकांश केवल ऊपरी दिखावा मात्र रहे हैं। उनमें से प्रत्येक ने केवल प्रथम दो वर्णों से ही सम्बन्ध रखा है, शेष दो से नहीं। विधवा-विवाह के प्रश्न से ७० प्रतिशत भारतीय स्त्रियों का कोई सम्बन्ध नहीं है। और देखो, मेरी बात पर ध्यान दो, इस प्रकार के सब आन्दोलनों का सम्बन्ध भारत के केवल उच्च वर्णों से ही रहा है, जो जन-साधारण का तिरस्कार करके स्वयं शिक्षित हुए हैं। इन लोगों ने अपने-अपने घर को साफ करने एवं अंग्रेजों के सम्मुख अपने को सुन्दर दिखाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। पर यह तो सुधार नहीं कहा जा सकता। सुधार करने में हमें चीज के भीतर – उसकी जड़ तक पहुँचना पड़ता है। इसी को मैं आमूल सुधार कहता हूँ।[१६४]

**प्रश्न – क्रान्ति किसके लिये?**

**उत्तर –** याद रखो कि राष्ट्र झोपड़ी में बसा हुआ है। ... राष्ट्र की भावी उन्नति ... आम जनता की अवस्था पर निर्भर है। क्या तुम जनता की उन्नति कर सकते हो? क्या तुम, बिना उनकी स्वाभाविक आध्यात्मिक वृत्ति को नष्ट किये, उन्हें उनका खोया हुआ व्यक्तित्व वापस दिला सकते हो?[१६५]

जिनके शारीरिक परिश्रम पर ही ब्राह्मणों का आधिपत्य, क्षत्रियों का ऐश्वर्य और वैश्यों का धन-धान्य निर्भर है, वे कहाँ हैं? समाज का मुख्य अंग होकर भी जो लोग सदा सब देशों में **जघन्य प्रभवो हि सः** कहकर पुकारे जाते हैं, उनका क्या हाल है? ... शूद्र किस दशा में हैं?[१६६]

**प्रश्न – इस क्रान्ति का श्रीगणेश कौन करेगा?**

**उत्तर –** नये युग का विधान है कि जनता ही जनता का परित्राण करे।[१६७]

मेरा विश्वास युवा पीढ़ी – नयी पीढ़ी में है। मेरे कर्मी उन्हीं में से आयेंगे। सिंहों की भाँति वे सभी समस्याओं के हल निकालेंगे। मैंने अपना आदर्श निर्धारित कर लिया है और उसके लिये अपना समस्त जीवन दे दिया है। यदि मुझे सफलता नहीं मिलती, तो मेरे बाद कोई अधिक उपयुक्त व्यक्ति आयेगा और इस काम को सँभालेगा। और मैं इसी में सन्तोष मानूँगा कि मैंने प्रयत्न किया। तुम्हारे सामने है – जन-साधारण को उसका अधिकार देने की समस्या। ... दूसरे देशों की आम जनता की तुलना में हमारी आम जनता देवता के समान है। ... उनका स्वयं पर से विश्वास उठ गया है। वे लोग समझने लगे हैं कि वे जन्मजात दास हैं। उन्हें उनका अधिकार प्रदान करो और उन्हें अपने अधिकारों की सहायता से खड़ा होने दो।[१६८]

इस कार्य की सिद्धि युवकों से ही होगी। युवा, आशिष्ठ, द्रढिष्ठ, बलिष्ठ, मेधावी – यह कार्य उन्हीं के लिये है।[१६९]

हे युवको, तुम लोग धनी-मानियों और बड़े आदमियों का मुँह ताकना छोड़ दो। याद रखो, संसार में जितने भी बड़े-बड़े और महान् कार्य हुए हैं, उन्हें गरीबों ने ही सम्पन्न किया है। इसलिये हे निर्धन युवकों, उठो और काम में लग जाओ! तुम लोग सब कुछ कर सकते हो और तुम्हें सब कार्य करने पड़ेंगे। यद्यपि तुम गरीब हो, फिर भी बहुत से लोग तुम्हारा अनुसरण करेंगे। दृढ़चित बनो और उससे भी बढ़कर पवित्र और पूरी तौर से निश्छल बनो। विश्वास करो – तुम्हारा भविष्य अत्यन्त गौरवपूर्ण है। हे युवको, तुम लोगों द्वारा ही भारत का उद्धार होने वाला है। तुम इस पर विश्वास करो या न करो, परन्तु तुम इस बात पर विशेष रूप से ध्यान रखो; और ऐसा मत समझो कि यह काम आज या कल ही पूरा हो जायेगा। जैसे मुझे अपनी देह और अपनी आत्मा के अस्तित्व पर दृढ़ विश्वास है, वैसे ही इस बात पर भी मेरा अटल विश्वास है। हे युवको, इसीलिये तुम्हारे प्रति मेरा हृदय इतना आकृष्ट है। जिनके पास धन-दौलत नहीं है, जो गरीब हैं, केवल उन्हीं लोगों का भरोसा है; और चूँकि तुम लोग गरीब हो, इसलिये तुम्हारे द्वारा यह कार्य होगा। चूँकि तुम्हारे पास कुछ नहीं है, इसीलिये तुम सच्चे हो सकते हो, और सच्चे होने के कारण ही तुम सब कुछ त्याग करने के लिये तैयार हो सकते हो। बस, केवल यही बात मैं तुमसे अभी-अभी कह रहा था। और पुनः तुम्हारे समक्ष मैं इसे दुहराता हूँ – यही तुम लोगों का जीवन-व्रत है और यही मेरा भी जीवन-व्रत है।[१७०]

❖ (क्रमशः) ❖

### सन्दर्भ-सूची –

**१५५**. विवेकानन्द साहित्य, (सं. १९८९), खण्ड ४, पृ. २३४; **१५६**. वही, खण्ड ५, पृ. ५९; **१५७**. वही, खण्ड ५, पृ. १७१-७२; **१५८**. वही, खण्ड ५, पृ. ५६; **१५९**. वही, खण्ड ४, पृ. २५२; **१६०**. वही, खण्ड ४, पृ. २४९-५०; **१६१**. निवेदिता ग्रन्थावली (अंग्रेजी), सं. १९८२, खण्ड १, पृ. ३४२; **१६२**. वही, खण्ड ८, पृ. २३४; **१६३**. वही, खण्ड ४, पृ. २४९; **१६४**. वही, खण्ड ५, पृ. १११; **१६५**. वही, खण्ड २, पृ. ३२१; **१६६**. वही, खण्ड ९, पृ. २१८; **१६७**. वही, खण्ड ४, पृ. २५५; **१६८**. वही, खण्ड ४, पृ. २६१; **१६९**. वही, खण्ड ५, पृ. २१२; **१७०**. वही, खण्ड ५, पृ. ३३५

# श्री हनुमत्-चरित्र (१/१)

*पं. रामकिंकर उपाध्याय*

(१९९१ ई. के अप्रैल-मई में रामकृष्ण आश्रम, राजकोट के तत्त्वावधान में पण्डितजी के जो प्रवचन हुए थे, 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से इन्हें लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य किया है श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी ने।

**महाबीर बिनवऊँ हनुमाना ।**
**राम जासु जस आप बखाना ।। १/१७/१०**
**प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन ।**
**जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ।। १/१७**

– मैं श्री महावीर हनुमानजी से विनती करता हूँ, जिनके यश का स्वयं श्रीराम ने ही बखान किया है। पवनपुत्र हनुमानजी को मेरा प्रणाम है, जो दुष्टरूपी वन को भस्म करने के लिये अग्नि के समान हैं और जिनके हृदयरूपी भवन में धनुष-बाण धारण किये श्रीराम निवास करते हैं।

भगवान रामकृष्णदेव की स्मृति में, उनके विचारधारा के प्रचार और प्रसार के लिए रामकृष्ण मिशन के द्वारा जो महान् कार्य, क्रिया-कलाप और सेवा चल रही है, वह हम सबकी दृष्टि में कितनी उपादेय है, कल्याणकारी है, इससे आप सब भलीभाँति परिचित हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण इस युग के अवतार-परम्परा में हैं, क्योंकि श्रीमद्-भागवत में भगवान के अवतारों की गणना करते समय यह भी कह दिया गया है कि जिन अवतारों के नाम बताए जा रहे हैं, अवतार केवल उतने ही नहीं हैं, भगवान के अवतार तो असंख्य हैं – **अवताराः ह्यसंख्येयाः ।**

इसका तात्पर्य यही है कि भगवान प्रत्येक युग और काल में विभिन्न रूपों में अवतरित होते हैं। इसलिए भगवान श्रीरामकृष्ण के रूप में जो महान् अवतार हुआ है और उस अवतार के सन्दर्भ के विचारधारा को जिन्होंने मूर्त रूप में साकार करने का प्रयत्न किया, स्वामी श्री विवेकानन्दजी महाराज, वह आज सारे विश्व में ज्ञात है। बहुत वर्षों से मैं रामकृष्ण मिशन के सम्पर्क में रहा हूँ, कानपुर, रायपुर और फिर यहाँ (राजकोट) अवसर मिला है। यहाँ आकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। मुझसे कहा गया है कि मैं आपके सामने श्री हनुमानजी महाराज के पावन चरित्र की चर्चा करूँ। स्वामी विवेकानन्दजी ने भी महानतम आदर्श के रूप में अपने ग्रन्थों में, भाषणों में भी श्री हनुमानजी की महिमा, उनकी उत्कृष्ट सेवा-भावना का वर्णन किया है। इसलिए मेरा विश्वास है कि इस आश्रम की पृष्ठभूमि में हम सब के लिए वह चरित्र और भी प्रेरक बनेगा। तो आइए, श्रीहनुमानजी के चरित्र पर एक दृष्टि डालने की चेष्टा करें।

हनुमानजी के विषय में कहा गया कि जब भगवान विष्णु मानव रूप में अवतरित होते हैं, तो भगवान शंकर उनकी सेवा के लिए हनुमानजी के रूप में अवतरित होते हैं, और उनके द्वारा प्रभु की जो अद्भुत सेवा होती है, वह तो वस्तुत: अवर्णनीय है, पर हम कुछ संकेतों पर दृष्टि डालने की चेष्टा करेंगे। भूमिका के रूप में पहले तो हम यही देखने का प्रयास करें कि मानव रूप में भगवान राम का अवतरण और वानर के रूप में भगवान शंकर के अवतरण का क्या अर्थ है, क्या अभिप्राय है। श्रीराम-चरित-मानस के प्रारम्भ में एक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। वह पृष्ठभूमि यह है कि अवतार कब होता है और ईश्वर जब मनुष्य के रूप में अवतार लेता है, तो उस अवतार के पीछे तात्पर्य क्या है, अभिप्राय क्या है? कथा के रूप में वह सूत्र इस प्रकार सामने रखा गया है कि रावण के अत्याचार से पूरी पृथ्वी व्याकुल हो गई थी और उससे उद्धार के लिये भगवान ने अवतार लिया।

वैसे अवतार शब्द का प्रयोग तो हम लोग बहुधा भगवान के लिए ही करते हैं, परन्तु गोस्वामीजी ने इस शब्द का प्रयोग रावण के साथ भी कर दिया। एक वाक्य आता है –

**कहेसि बहुरि रावन अवतारा ।। ७/६४/८**

रावण का अवतार ! बड़ा विचित्र वाक्य है। भगवान का अवतार तो समझ में आता है, पर रावण के अवतार का क्या तात्पर्य है? इसे इस दृष्टि से देखें। अवतरण के अनेक अर्थों में से एक अर्थ है – नीचे की ओर आना। और नीचे की ओर आने की भी दो पद्धतियाँ हैं। एक तो यह है कि कोई व्यक्ति सहसा ऊपर से नीचे की ओर गिर पड़े और वह नीचे आ जाय। और दूसरा यह है कि यदि कोई व्यक्ति ऊपर बैठा हो, वह सहसा देखे कि कोई व्यक्ति ऊपर से नीचे गिर पड़ा और उसको उठाने के लिए यदि वह स्वयं नीचे उतरे।

दिखाई तो यही देगा कि वह उतरा हुआ व्यक्ति भी नीचे खड़ा है, परन्तु अन्तर इतना ही है कि एक व्यक्ति तो नीचे गिरा अपनी असावधानी, अपने प्रमाद, अपनी भूल के कारण और दूसरे व्यक्ति ने उसे उठाने के लिए नीचे उतरना स्वीकार किया। तो रावण के साथ जब अवतार शब्द का प्रयोग किया गया तो इसका तात्पर्य यह है कि रावण ऊपर से नीचे गिर पड़ा और जब यह कहा जाता है कि भगवान राम ने अवतार

लिया, तो इसका तात्पर्य यह है कि उस गिरे हुए रावण को ऊपर उठाने के लिये ईश्वर भी नीचे उतर आया। इसके बाद उस गिरे हुए व्यक्ति को उठाने का उन्होंने जो प्रयत्न किया, वही अवतार का मुख्य उद्देश्य है। इसीलिए रामायण में भगवान राम के अवतार के पहले रावण के चरित्र का वर्णन किया गया और यह बताने की चेष्टा की गई कि रावण के रूप में जिस व्यक्ति को हम त्रेतायुग में देखते हैं, इतिहास में देखते हैं, क्या वह प्रारम्भ से ही एक बुरा व्यक्ति था? और उसका जो उत्तर दिया गया, वह बड़ा विस्तृत प्रसंग है, उन सबको कह पाना यहाँ सम्भव नहीं है। एक प्रसंग में कहा गया है कि भगवान के दो द्वारपाल थे – जय तथा विजय और वे ही रावण और कुम्भकर्ण बने; दूसरे प्रसंग में दूसरे कल्प के लिए बताया गया है कि भगवान शंकर के दो गण ही रावण और कुम्भकर्ण बने।

अगर कोई बैकुण्ठ से नीचे गिरा, तो इसका सीधा सा तात्पर्य यह है कि वह व्यक्ति मूलत: बुरा नहीं था। मूलत: तो वह ईश्वर के धाम में निवास करने वाला द्वारपाल था। और यदि इसे विस्तृत अर्थों में लें तो इसका तात्पर्य यह है कि यदि जीव ईश्वर का अंश है, तो वह इस नाते बुरा तो हो ही नहीं सकता।

हमारे यहाँ दो धारणाएँ हैं – एक भौतिक विज्ञान की और दूसरी आध्यात्मिक विज्ञान की। भौतिक विज्ञान कहता है कि जड़ का विकास ही यह संसार है। और यह सृष्टि क्रम-विकास की ओर बढ़ रही है। परन्तु आध्यात्मिक विज्ञान की धारणा इससे भिन्न है। आध्यात्मिक विज्ञान मानता है कि यह संसार, **यह सृष्टि जड़ का विकास नहीं है, अपितु चैतन्य का विलास है।** तो भौतिक विज्ञान का कहना है कि जो भूत है, स्थूल है, वह क्रमश: विकसित होता है और विकसित होते हुए संसार में मनुष्य इतना आगे बढ़ जाता है। मनुष्य के रूप में उसका परिवर्तन हुआ। यह एक पद्धति है। यहाँ मूल में किसी चेतन-तत्त्व को स्वीकार नहीं किया गया। जड़ तत्त्वों का एक संगठन, उनका क्रमश: सम्मिलन ही सृष्टि के निर्माण का कारण बनता है। परन्तु आध्यात्मिक विज्ञान की मान्यता यह है कि नहीं, सृष्टि के मूल में जड़ तत्त्व नहीं था, सृष्टि के मूल में चैतन्य है। आप लोगों ने तुलसीदासजी की 'विनय-पत्रिका' में पढ़ा होगा –

**तुलसीदास कह चिदबिलास जग**
**बूझत बूझत बूझै ।। १२४/५**

यह जगत् तो चैतन्य का विलास है। राम-चरित-मानस में तो ऐसा ही स्वीकार किया गया। रावण और कुम्भकर्ण भी चैतन्य के ही स्वरूप हैं, चैतन्य के ही अंश हैं।

इसके साथ ही पुराणों की कथाएँ भी बड़ी सांकेतिक हैं। कहते हैं कि जय और विजय भी देखने में बिलकुल भगवान जैसे हैं। भगवान जैसा ही उनका रूप है, भगवान जैसा ही उनका रंग है। भगवान विष्णु के समान ही उनकी भी चार भुजाएँ हैं। बहुत बड़ा संकेत है। और इसका अर्थ यह है कि अंश जब होगा, तो अपने पूर्ण के समान ही तो होगा। और जब पूर्ण का अंश होगा, तो अपने आप में पूर्ण तो होगा ही।

संसार में जब बुरे-से-बुरे व्यक्ति दिखाई देते हैं और यह प्रश्न उठता है कि व्यक्ति कैसे बुरा हो गया। शास्त्रों में वह क्रम बताया गया कि व्यक्ति भगवान का अंश होते हुए भी कैसे नीचे की ओर गिर जाता है, कैसे वह रावण और कुम्भकर्ण बन जाता है! चाहे वह भगवान विष्णु से जुड़ा हुआ हो, अथवा भगवान शंकर से जुड़ा हुआ हो, पर सूत्र वही है। मानव रूप में और भी एक बड़ा सुन्दर सूत्र दिया गया है, जो बड़ा ध्यान देने योग्य है।

उपरोक्त दोनों पात्र तो भगवान के पार्षद रहे हैं, परन्तु रामायण में दो अन्य पात्र आते हैं, जो समानान्तर हैं – एक ओर दशरथ हैं और दूसरी ओर दशमुख है। दशरथ वह है, जहाँ राम अवतरित होते हैं और दशमुख वह है, जिस पर भगवान बाण का प्रहार करते हैं और मानो उसका वध करते हैं। उसके बाद एक बड़ी अनोखी सी बात बताई गई है, और वह बड़े महत्त्व की है कि भगवान श्रीराम ने जब रावण पर बाण चलाया, तो रावण का सिर कटा और उसके सिर से, उसके मुख से एक प्रकाश निकला और वह जाकर भगवान में समा गया। यही रामायण का दर्शन है। इसका अभिप्राय यह है कि मूल रूप में भी वह ईश्वर का ही अंश था, मध्य में केवल बुरा दिखाई दिया, और अन्त में जब भगवान अवतार लेते हैं, तो अवतार लेने के बाद उसे फिर से अपने आप में विलीन कर लेते हैं अपने आप में एकाकार कर लेते हैं, अपने आप में मिला लेते हैं।

इस प्रकार आदि और अन्त में तो वह ईश्वर से एकाकार ही हैं, जुड़ा हुआ है। पर बीच में जो बुरा दिखाई दे रहा है, इसके पीछे क्या कारण है? एक कथा तो जय-विजय की आई। दूसरी शंकर के गणों की आई और तीसरी कथा दो मनुष्यों की है। एक मनुष्य दशरथ और दूसरा दशमुख बन गया। इसमें एक बड़े महत्त्व का संकेत है। मानो हम सबके लिए एक सूत्र दिया गया कि मनुष्य ही दशरथ बनता है और मनुष्य ही दशमुख बनता है। तो ऐसी स्थिति में हमें विचार करना होगा कि हम अपने जीवन में दशरथ की भूमिका की ओर बढ़ रहे हैं या दशमुख की भूमिका की ओर।

पुराणों की कथाएँ भी बड़ी संकेत भरी हैं। मनुष्य जाति के आदि-पुरुष का नाम है मनु। उन्हीं से यह मानव सृष्टि हुई है और मनु की सन्तान होने के नाते ही हम सब मनुष्य कहे जाते हैं। महाराज मनु के चरित्र का वर्णन करते हुए कहा गया कि उन्होंने जीवन में बड़े ही कर्तव्य और मर्यादाओं का

पालन करते हुए अपने राज्य का संचालन किया। मनु के द्वारा निर्मित ग्रन्थ 'मनुस्मृति' का नाम आपने सुना होगा। वह ग्रन्थ बड़े महत्त्व का है।

महाराज मनु ने अपने जीवन में समस्त कर्तव्य-कर्मों का निर्वाह किया, धर्म का निर्वाह किया, पर जब वे वृद्ध हो गये, तो वे विचार करने लगे; वैसे ही, जैसे कोई व्यापार करने वाला व्यक्ति दिन भर व्यापार करने के बाद संध्या को हिसाब -किताब करता है कि आज उसने जो कुछ किया, उसमें कितना लाभ हुआ, या कितना घाटा हुआ।

वृद्धावस्था क्या है? साधारणत: व्यक्ति तो वृद्धावस्था को अभिशाप के रूप में ही देखता है। प्रत्येक व्यक्ति को यही लगता है कि वृद्धावस्था बड़ी दुखदाई है। यह न आती तो कितना अच्छा होता। परन्तु रामायण में एक सूत्र मिलता है। ईश्वर ने हमें जो मनुष्य का शरीर दिया है, यह शरीर हमें एक उपदेश दे रहा है। महात्माओं के द्वारा तो उपदेश मिलता ही है, पर इस शरीर के उपदेश को यदि हम ध्यान से सुन सकें, तो नि:सन्देह यह एक महान् गुरु सिद्ध हो सकता है। बड़ा प्रेरक सिद्ध हो सकता है। दत्तात्रेयजी ने अपने चौबीस गुरुओं में शरीर को भी एक गुरु के रूप में स्वीकार किया है। देवताओं का शरीर उच्च लोकों तथा उच्च कोटि का और पशु-पक्षियों का शरीर निम्न कोटि का माना जाता है। परन्तु रामायण में मनुष्य के शरीर की कुछ अलग ही विशेषता बताई गई है। देवताओं का शरीर सबसे उत्कृष्ट प्रतीत होता है, क्योंकि कहते हैं कि देवता कभी बूढ़े नहीं होते, वे सदैव युवा रहते हैं, उन्हें कोई रोग नहीं होता। वर्णन पढ़कर बहुतों के मन में ऐसा शरीर पाने का लोभ होता है और किसी भी मृत व्यक्ति के लिए जब स्वर्गीय शब्द का प्रयोग करते हैं, तो यही मानकर करते हैं कि स्वर्ग से तो कोई अच्छा स्थान नहीं है। व्यक्ति मरकर चाहे कहीं भी क्यों न गया हो, पर उसे स्वर्गीय कहना ही अच्छा मानते हैं। प्रशंसा के लिए ही हम लोग स्वर्गीय शब्द का प्रयोग करते हैं। लगता है वहाँ मृत्यु नहीं होती, रोग नहीं होता, वृद्धावस्था नहीं आती। वह देव-शरीर कितना अच्छा है ! और जहाँ तक पशु-पक्षियों का शरीर है, वे तो बेचारे नीचे की ओर हैं ही। परन्तु भगवान राम ने अपनी प्रजा को जो उपदेश दिया, उसमें कहा – मनुष्य के शरीर के समान और कोई शरीर नहीं है –

**नर तन सम नहिं कउ निउ देही ।। ७/१२०/९**

मनुष्य-शरीर के साथ रोग लगा हुआ है, बुढ़ापा लगा हुआ है, मृत्यु लगी है; तो फिर वह शरीर देवताओं की तुलना में श्रेष्ठ कैसे हो सकता है? भगवान एक सूत्र देते हैं और वह यह है कि देवताओं के शरीर में एक बाध्यता है। एक दृष्टान्त लेते हैं। आप जब कोई मकान बनाते हैं, तो उसमें एक सीढ़ी भी बनी होती हैं और वह सीढ़ी एक स्थान पर ही स्थित होगी। वह जिस कमरें से जुड़ी हुई होगी, आप चढ़कर उसी में जा सकते हैं। परन्तु एक सीढ़ी ऐसी भी होती है, जो लकड़ी या लोहे की बनाई जाती है। इसकी यह विशेषता है कि उसे आप जहाँ भी चाहें, लगा सकते हैं। यह चलती-फिरती सीढ़ी है। रामायण में कहा गया कि अन्य शरीर – चाहे वे देवताओं के हों, या पशु-पक्षियों के – वे तो जैसे पक्के बने हुए हैं कि व्यक्ति वहीं रहने के लिए बाध्य है। परन्तु मनुष्य का शरीर एक ऐसी सीढ़ी है कि आप इसे चाहे जहाँ लगा दीजिए। स्वर्ग के द्वार से जोड़ दीजिए तो स्वर्ग चले जाइए, नरक के द्वार से जोड़ दीजिए तो नरक चले जाइए। मोक्ष के द्वार से जोड़ दीजिए तो मोक्ष पा लीजिए –

**नरक स्वर्ग अपवर्ग**
**निसेनी ।। ७/१२०/१०**

यह स्वतंत्रता देवताओं को भी नहीं है, पशु-पक्षियों को भी नहीं है। अत: मनुष्य शरीर अपने आप में साधना का अद्भुत केन्द्र है। गोस्वामीजी से किसी ने कहा – लेकिन जब शास्त्र यह कहते हैं कि स्वर्ग में रोग ही नहीं होता, तो वह शरीर कितना अच्छा होता होगा। इस पर गोस्वामीजी बोले – "यह बात पूरी-पूरी सत्य नहीं है। स्वर्ग में भी एक रोग होता है। और संसार में जो रोग होते हैं, उनकी तो दवा होती है, पर स्वर्ग के देवताओं को जो रोग होता है, उसकी कोई दवा नहीं होती। पूछा गया – देवताओं को होनेवाला वह भला कौन सा रोग है? उत्तर मिला – ईर्ष्या का रोग। देवताओं के जीवन में ईर्ष्या का असाध्य रोग है –

**स्वर्गउ मिटत न सावत ।।**

ईर्ष्या तो मनुष्य में भी होती है, पर उसमें और देवताओं की ईर्ष्या में एक भेद है। आपकी यदि किसी से ईर्ष्या हो, तो आप पुरुषार्थ करके आगे बढ़ सकते हैं। परन्तु स्वर्ग की समस्या है कि कोई देवता जीवन भर ईर्ष्या कर सकता है, लेकिन वह आगे बढ़ नहीं सकता। वह जितना पुण्य लेकर आया है, उसको तो बस उतना ही मिलेगा। वहाँ पुण्य बढ़ाने का कोई प्रश्न ही नहीं है। तो जब कोई देवता अपने बगलवाले देवता को देखता है कि उसको जरा ऊँचा आसन

मिला है, उसके निकट सुन्दरी अप्सराएँ हैं, तो वह बेचारा दुखी होता रहता है कि मेरे पास यह कमी है।

देवता ईर्ष्यालु होते हैं और वे सर्वदा ईर्ष्या की अग्नि में जलते रहते हैं। उससे उन्हें क्षण भर के लिए भी मुक्ति नहीं मिलती। पुराणों में इस ईर्ष्या को लेकर जो कथाएँ मिलती हैं, वे तो और भी सांकेतिक है। महाराज दशरथ के पिता थे अज, अज के पिता रघु और रघु के पिता थे महाराज दिलीप। शास्त्रों में लिखा है कि जब कोई व्यक्ति सौ अश्वमेध यज्ञ पूरा कर लेता है, तब उसे इन्द्रपद मिलता है। महाराज दिलीप ने स्वर्ग के आकर्षण से प्रेरित होकर सौ अश्वमेध यज्ञ का संकल्प लिया और निन्यानबे यज्ञ उन्होंने पूरे किए। सौवाँ यज्ञ जब वे करने लगे, तो यज्ञ का घोड़ा चोरी चला गया। खोज होने लगी, संसार में कहीं भी घोड़ा नहीं मिला। तब किसी मुनि के द्वारा पता चला कि उस घोड़े को तो इन्द्र चुराकर ले गया है। दिलीप के पुत्र रघु बड़े प्रतापी थे। बोले – मैं अभी स्वर्ग पर आक्रमण करके इन्द्र को दण्ड दूँगा और घोड़ा छीन कर ले आऊँगा। पर दिलीप ने रोक दिया। उन्होंने कहा – नहीं, स्वर्ग में जाकर घोड़ा वापस लाने की कोई जरूरत नहीं। – "बड़े आश्चर्य की बात है ! महाराज, आपके निन्यानबे यज्ञ पूरे हो चुके हैं और सौवे यज्ञ को पूर्ण करने में केवल घोड़ा वापस लाने की आवश्यकता है। तो आप क्यों कहते हैं युद्ध करके घोड़ा वापस न लाया जाय।"

इस पर दिलीप ने जो बात कही, वह बड़े पते की है। दिलीप बोले – "जब मैंने देख लिया कि सौ अश्वमेघ यज्ञ कर लेने के बाद भी जब इन्द्र की चोरी करने की आदत नहीं गई, तो मैं सोचता हूँ कि इन्द्र न बनना ही अच्छा है।" इसका अर्थ क्या हुआ? इन्द्र ने घोड़े को क्यों चुरा लिया? इसलिये कि यदि वह घोड़ा होता, तो सौवाँ यज्ञ पूरा होने के बाद उस इन्द्र बेचारे को हटना पड़ता। आजकल जैसे लोग पदों से हट जाते हैं और ईर्ष्या करते है, तो बात समझ में आती है, परन्तु शास्त्र कहते हैं कि इन्द्रों का समय बना हुआ है। जितने व्यक्तियों ने सौ अश्वमेध यज्ञ किए हैं, वे अपने निर्धारित समय तक इन्द्र बने रहेंगे। उन सबका नाम सूची में रहेगा और वे एक-एक कर इन्द्र बनेंगे, जब जिसका क्रम आयेगा, तब उसको इन्द्र-पद मिलेगा।

आश्चर्य की बात यह थी कि इस इन्द्र को हटना पड़ता। वह इन्द्र तो अपने पूरे काल तक रहता ही, पर देवता की यह कैसी ईर्ष्या-वृत्ति है ! वह सोचता है कि भविष्य में भी कोई इन्द्र न बने। इसका अर्थ यह है कि जिस देवत्व को हम इतने आकर्षण की चीज समझते हैं, उसे गहराई से देखने पर समझ में आ जाता है कि इसमें विशेष कुछ नहीं है; जैसे संसार में भोग में आसक्त, भोग में डूबे हुए भोगी व्यक्तियों में ईर्ष्या होती है, वैसे ही देवताओं में भी होती है। बल्कि देवताओं की तो और भी एक समस्या है कि वे आगे बढ़ने में असमर्थ हैं। और दूसरी ओर पशु-पक्षियों का शरीर है, उनकी भी अपनी सीमाएँ हैं, अपनी बाध्यताएँ हैं।

परन्तु मनुष्य-शरीर इस रूप में बनाया गया है कि व्यक्ति यदि ध्यान से उस शरीर को देखे, तो उसे स्पष्ट ज्ञात हो जायेगा कि यह शरीर हमें प्रति क्षण उपदेश दे रहा है। इस शरीर का क्रम क्या है? एक तो यह कि ईश्वर ने मानव-शरीर को एकरस नहीं बनाया है, सतत परिवर्तनशील बनाया है। बचपन, युवावस्था और फिर वृद्धावस्था। इस शरीर के द्वारा ईश्वर ने मानो जो अनेक उपदेश दिये हैं, अनेक संकेत दिये हैं, वे बड़े महत्त्व के हैं। वे संकेत इस प्रकार हैं – बाल्यावस्था में व्यक्ति नन्हें शिशु के रूप में असमर्थ रहता है तथा वृद्ध हो जाने पर भी व्यक्ति उसी प्रकार से असमर्थ हो जाता है। उसके जीवन में परतंत्रता आ जाती है। बीच में जो युवावस्था है, केवल इसी में व्यक्ति को लगता है कि वह स्वतंत्र है। इसका अर्थ बुद्धिमान व्यक्ति समझ ले, इस सत्य को जान ले कि आदि में भी कोई अभिमान करने जैसी वस्तु नहीं है और अन्त में भी कोई अभिमान करने जैसी वस्तु नहीं है। केवल इस बीच में ही हमने किसी भ्रम से अपने आपको अभिमानी बना लिया है। शरीर मानों यही संकेत हमें दे रहा है। यदि हम शरीर की रचना पर दृष्टि डालें, तो भी यही बात स्वभावतः हमारे सामने आती है। इस शरीर की रचना ऐसी की गई कि बाल्यावस्था में समझने की शक्ति उतनी नहीं है, जितनी कि स्मरण रखने की शक्ति है; युवावस्था में कर्म करने की शक्ति है और वृद्धावस्था में विचार करने की शक्ति है। तो बुद्धिमान व्यक्ति वह है कि ईश्वर ने जिस अवस्था के लिए जो क्षमता दी है, उस अवस्था में उसका सदुपयोग करे। जो सदुपयोग करेगा, उसके जीवन में इन तीनों का तारतम्य आ जायेगा। बाल्यावस्था भक्ति को जन्म देनेवाली है, युवावस्था कर्म की वृत्ति को जन्म देनेवाली है और वृद्धावस्था व्यक्ति को विचार और ज्ञान की दिशा में प्रेरित कर सकती है। और व्यक्ति इन तीनों का सदुपयोग करते हुए अपने जीवन को धन्य बना सकता है। ❖ **(क्रमशः)** ❖

# भागवत की कथाएँ (३)

*स्वामी अमलानन्द*

(श्रीमद् भागवतम् पुराणों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उसकी कथाओं ने युग-युग से मनुष्य को धर्म के प्रति आस्था-विश्वास दिया है जिससे भारतवासियों ने दृढ़ आत्म-विश्वास प्राप्त किया है। उन्हीं कथाओं में से लेखक ने कुछ का चयन करके सरल भाषा तथा संक्षेप में पुनर्लेखन किया है। 'विवेक-ज्योति' के लिये इस ग्रन्थ का सुललित अनुवाद किया है छपरा के डॉ. केदारनाथ लाभ, डी. लिट्. ने। – सं.)

## ध्रुव उपाख्यान

(बच्चे दुर्बल नहीं होते। आन्तरिक हो, तो उनकी भी मनोकामना पूरी होती है। पाँच वर्ष के बालक ध्रुव ने अपनी विमाता की बातों से अपमानित होकर राजसिंहासन पाने के लिए श्रीहरि की आराधना की थी और उसमें वे सफल भी हुए थे।)

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने एक दिन एक नया रूप धारण किया। देखते-ही-देखते यह नया शरीर दो भागों में विभक्त हो गया। एक भाग से पुरुष और दूसरे भाग से स्त्री उत्पन्न हुई। पुरुष मनु हुए और स्त्री उनकी पत्नी शतरूपा हुई। मनु और शतरूपा के दो पुत्र हुए – एक का नाम था उत्तानपाद और दूसरे का प्रियव्रत।

उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं – सुरुचि और सुनीति। सुरुचि के पुत्र का नाम था उत्तम और सुनीति के पुत्र का नाम था ध्रुव। राजा का सुरुचि के प्रति अधिक प्रेम था। उसके पुत्र उत्तम को गोद में लेकर वे सिंहासन पर बैठा करते थे। एक दिन उत्तानपाद सिंहासन पर बैठे हुए थे – यह देखकर ध्रुव ने पिता की गोद में जाकर सिंहासन पर बैठना चाहा। सुरुचि ने कहा – "ध्रुव! तुम सुनीति के पुत्र हो। राजसिंहासन पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। श्रीहरि की तपस्या कर यदि अगले जन्म में मेरा पुत्र होकर जन्म ले सको, तभी तुम इस मनमोहक राजसिंहासन पर बैठने का अधिकार पा सकोगे।

विमाता की इस फटकार से बालक ध्रुव रोते हुए अपनी माता सुनीति के पास गया। माँ ने ध्रुव को स्नेहपूर्वक अपनी गोद में लेकर उससे कहा – "मेरे दुलारे, रोओ मत। दूसरे को अपराधी क्यों मानते हो? जो किसी दूसरे को दु:ख देता है, वह स्वयं भी दु:ख पाएगा। तुम्हारी विमाता अपनी कठोर वाणी के लिए स्वयं ही दण्ड पाएँगी। मैं राजा की प्रिय नहीं हूँ। मैं कुछ कहने जाऊँ, तो राजा मेरी बात पर ध्यान नहीं देंगे। फिर सुरुचि ने भी तो तुम्हें ठीक ही कहा है कि अनन्य भाव से श्रीहरि की पूजा-उपासना करो। इसके अतिरिक्त तुम्हें राजसिंहासन पाने का और कोई उपाय नहीं है। जिनके चरण-कमल की सेवा कर ब्रह्मा ने ब्रह्मपद पाया है और मुनिगण जिनके चरणों की वन्दना करते रहते हैं, तुम उन्हीं पद्म-पलाश-लोचन श्रीहरि से अपने मन की बात कहो। श्रीहरि के सिवा कोई दूसरा तुम्हारा दु:ख दूर नहीं कर सकेगा।

बालक ध्रुव ने अपनी माँ की बात पर पूर्ण विश्वास करके तत्काल राजपुरी को त्याग दिया और वन की ओर चल पड़े। – "कहाँ हो श्रीहरि! दर्शन दो!" मार्ग में उनकी देवर्षि नारद से भेंट हुई। जहाँ भगवान के भक्त रहते हैं, वहीं नारद आ पहुँचते हैं। उन्होंने सरल शिशु के मुख से सारी बात जान ली। इसके बाद नारद ने उसकी परीक्षा लेने के लिए कहा – "ध्रुव, तुम तो नितान्त शिशु दिख रहे हो! तपस्या कैसे करोगे? तपस्या तो बड़ा कठिन कार्य है! और भगवान को पाना – यह तो और भी कठिन है। इसलिये बेटा! तुम इस मार्ग को छोड़ दो और घर लौट जाओ।" इसके उत्तर में ध्रुव बोले – "विमाता ने मेरा अपमान किया है। मेरा मन बड़ा चंचल और हृदय अशान्त है। मेरे अशान्त हृदय में आपके उपदेश के लिए कोई जगह नहीं है। महाराज! मेरे पुरखे जो नहीं पा सके, मैं श्रीहरि के उसी अभय पद को पाने की इच्छा करता हूँ। आप स्वयं ब्रह्मा के अंश हैं। मुझे सही मार्ग बता दीजिए।" नारद ने इस पर प्रसन्न होकर कहा – "मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। तुमने सही कहा है – श्रीहरि की चरण-वन्दना ही एकमात्र रास्ता है। तुम यमुना तट पर स्थित मधुवन (वृन्दावन) जाओ, वहाँ पर वे (श्रीहरि) नित्य निवास करते हैं। वहाँ तुम एकाग्र मन से उन्हें पुकारो – और 'ॐ नमो वासुदेवाय' – इस मंत्र का जप करो।

नारद के उपदेश के अनुसार ध्रुव मधुवन पहुँचा। उन्होंने स्वयं को अति कठोर तपस्या में लगा दिया। ध्रुव की तपस्या से प्रसन्न होकर कुछ दिनों बाद ही श्रीहरि ने उसे दर्शन दिया। ध्रुव ने अपने सामने श्रीहरि का मनमोहक रूप देखा। मुग्ध बालक ने स्वयं को श्रीहरि के चरणों में समर्पित कर दिया। ध्रुव उनकी स्तुति कैसे करें? वे तो कुछ भी जानते नहीं थे। तभी शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीहरि ने अपने वेदमय शंख से ध्रुव के गाल का स्पर्श कर दिया। तब भक्ति-गद्गद हृदय से ध्रुव भगवान की स्तुति करने लगे। श्रीहरि ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया – हे सुव्रत! तुम्हें अपने पिता का सिंहासन मिलेगा और पिता के राज्य पर तुम दीर्घकाल तक शासन करोगे। इस जीवन के बाद तुम मेरा स्मरण करके स्वर्गलोक जाओगे – जिसका तुम्हारे ही नाम पर नाम होगा – ध्रुवलोक।

पिता के सिंहासन की कामना से ध्रुव ने श्रीहरि की चरण-वन्दना की थी। आज उनकी वह कामना पूर्ण हुई। इसके

अतिरिक्त उन्हें श्रीहरि का दर्शन भी मिला। ध्रुव अपने राज्य में लौट आये। पुत्र को वापस पाकर राजा खूब आनन्दित हुए। उन्हें पहले ही नारद से अपने पुत्र की साधना की बात ज्ञात हो चुकी थी। अब यह जानकर उनके आनन्द की सीमा न रही कि उनके पुत्र ने अपनी तपस्या के बल पर श्रीहरि की कृपा से उनका दर्शन पा लिया है।

क्रमशः ध्रुव ने यौवन में पदार्पण किया। उत्तानपाद ने अपने पुत्र का राजपद पर अभिषेक किया और तदुपरान्त तपस्या करने हेतु वन में चले गये।

ध्रुव सिंहासन पर आसीन होकर श्रीहरि के निर्देशानुसार राज्य का पालन करने लगे। इधर भ्राता उत्तम जब शिकार करने गये थे, तो वहाँ एक यक्ष ने उनकी हत्या कर दी। पुत्र की खोज में जाकर विमाता सुरुचि का भी प्राणान्त हो गया। यह सुनकर ध्रुव ने यक्षों को समुचित दण्ड देने के निमित्त राजा कुबेर की अलकापुरी पर आक्रमण कर दिया। दोनों ओर के बहुत-से सैनिक हताहत हुए। बाद में पितामह मनु के परामर्श पर ध्रुव ने कुबेर के साथ सन्धि कर ली।

अपने भीतर तथा सर्वभूतों में श्रीगोविन्द का दर्शन करते हुए ध्रुव ने सुदीर्घ काल तक राज्य-शासन किया। अन्त में पुत्र को राज्य देकर वे बदरिकाश्रम चले गए। फिर अन्तिम काल आया। विष्णु के दूतगण उन्हें उठाकर पूर्व-निर्दिष्ट ध्रुवलोक में ले गए। ध्रुवतारा आकाश में जाज्वल्यमान रहकर आज भी ध्रुव की कथा का स्मरण कराता है।

## पुरंजन की कहानी

(जीवात्मा और परमात्मा मानो दो परम मित्र हैं। जीवात्मा सुखभोग की आशा में भाग-दौड़ करती है और अपने कर्मफल से बहुत दुःख पाती है। इसके बाद परमात्मा एक परम मित्र की भाँति उसे मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं।)

अभी हमने ध्रुव का उपाख्यान पढ़ा। अब उनके एक वंशज प्राचीनबर्हि की कथा बतायी जायेगी। वे स्वर्ग-प्राप्ति की आशा में याग-यज्ञ करके अनेक पशुओं का वध करते थे। देवर्षि नारद ने उन्हें इससे विरत करने के लिए अनेक उपदेश दिए। और इसके साथ ही एक सुन्दर कथा सुनायी –

बहुत दिनों पहले पुरंजन नामक एक राजा थे। उन्हें नये-नये देशों में घूमने का शौक था। वे अपनी पसन्द का एक नगर ढूँढ़कर वहीं निवास करना चाहते थे। बहुत खोजने के बाद हिमालय के पाद-प्रदेश में उन्हें वह नगर मिला। नगर परम मनोरम था। उसमें नौ सिंहद्वार, सुन्दर-सुन्दर अट्टालिकाएँ तथा चारों ओर पुष्पोद्यान थे। वहाँ ढेर सारे रत्न-धन भी थे। वे जो चाहते थे, मानो वह सब कुछ पा गए। वहीं कुछ दिनों के भीतर ही उनकी एक परम सुन्दरी राजकुमारी के साथ भेंट हुई। प्रथम दृष्टि में ही दोनों एक दूसरे के प्रति अनुरक्त हो गए। पुरंजन ने राजकुमारी से विवाह कर लिया।

पुरंजन के दिन बड़े सुख में कट रहे थे। राजकुमारी जो कहती, राजा वही करते। यह सुन्दर रमणी ही उनका ज्ञान, ध्यान – सब थी। राजकुमारी के दुःख में उनका दुःख और राजकुमारी के सुख में ही उनका सुख निहित था। एक दिन राजा दस घोड़ोंवाले एक सुन्दर रथ में सवार होकर शिकार करने गए। मन की तृप्ति और अनेक पशुओं का शिकार कर जब पुरंजन लौटे, तब तक बहुत रात हो गयी थी। देर होने के कारण राजकुमारी बड़ी क्षुब्ध थी। रूठी पत्नी की उन्होंने बड़ी खुशामद की, तब कहीं वह शान्त हुई। कुछ काल के उपरान्त दोनों को कई बेटे-बेटियाँ हुईं।

परन्तु सब दिन जात न एक समाना। जब पुरंजन भोग-सुख में आकण्ठ डूबे थे, तभी गंधर्वराज चण्डवेग ने उनके नगर पर आक्रमण कर दिया। उसके साथ ३६० गन्धर्व तथा उनकी पत्नियाँ थीं। चण्डवेग के प्रचण्ड वेग से पुरंजन की परमप्रिय राजधानी धूल में मिल गयी। फिर उसी समय एक यवन-राजा आकर उपस्थित हुआ और वह पुरंजन को बन्दी बनाकर ले गया। यवनेश्वर जादू की विद्या में पारंगत था। उसने जादू के बल से पुरंजन को एक रूपवती नारी में परिणत कर दिया। पुरंजन की पूर्व-स्मृति लुप्त हो गयी। वे अपनी धन-सम्पत्ति तथा पुत्र-पुत्रियों को भूल गये। उनका मलयध्वज नामक एक राजा के साथ विवाह हो गया।

राजा मलयध्वज की कुछ ही दिनों में मृत्यु हो गयी। पुरंजन उनकी रानी थे। उन्हें राजा के साथ सती होना था। इसके लिये चिता तैयार की गयी।

ठीक तभी एक सौम्य तेजोमय ब्राह्मण ने वहाँ उपस्थित होकर कहा – "पुरंजन! क्या तुम अपने को बिलकुल ही भूल गए हो? तुम नारी नहीं हो; तुम राजा के साथ क्यों मरोगे? मृत व्यक्ति के साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं। तुम राजा थे। तुम और मैं बड़े पुराने मित्र हैं। हम लोग मानसरोवर में दो हंस थे। भोग-विलास के सुख के लिए लालायित होकर तुम मुझे भूल गये थे।" मित्र की बात सुनकर पुरंजन को धीरे-धीरे होश हुआ और पूर्व-स्मृति लौट आयी।

नारद मुनि द्वारा कही गयी कथा बड़ी अर्थपूर्ण है। राजा द्वारा कथा की व्याख्या करने का अनुरोध किये जाने पर नारद बोले – पुरंजन जीव तथा उनके मित्र (ब्राह्मण) ईश्वर हैं। जिस नारी द्वारा राजा संचालित होते थे, वह है बुद्धि। पुरंजन के नगर के द्वारों की संख्या नौ थी। हममें से प्रत्येक के शरीर में नौ द्वार हैं – दो आँखें, दो नाक, दो कान, एक मुख, एक मलद्वार तथा एक मूत्रद्वार। ३६० गन्धर्व और उनकी पत्नियाँ हैं ३६० दिन और रात। चण्डवेग महाकाल, यवनेश्वर मृत्यु तथा दो हंस जीवात्मा एवं परमात्मा के प्रतीक हैं।

( शेष अगले पृष्ठ पर )

# आत्माराम की आत्मकथा (४४)

*स्वामी जपानन्द*

(रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी जपानन्द जी (१८९८-१९७२) श्रीमाँ सारदादेवी के शिष्य थे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने उन्हें संन्यास-दीक्षा प्रदान की थी। भक्तों के आन्तरिक अनुरोध पर उन्होंने बँगला भाषा में श्रीरामकृष्ण के कुछ शिष्यों तथा अपने अनुभवों के आधार पर कुछ प्रेरक तथा रोचक संस्मरण लिपिबद्ध किये थे। इसकी पाण्डुलिपि हमें श्रीरामकृष्ण कुटीर, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त हुई है। अनेक बहुमूल्य जानकारियों से युक्त होने के कारण हम इसका क्रमश: प्रकाशन कर रहे हैं। इसके पूर्व भी हम उनकी दो छोटी पुस्तकों – 'प्रभु परमेश्वर जब रक्षा करें' तथा 'मानवता की झाँकी' का धारावाहिक प्रकाशन कर चुके हैं – सं.)

### मैंगरोल का समुद्र-तट

बिलखा निवास के दौरान त्रिभुवन भाई के साथ या आगे-पीछे तीन बार मुम्बई-अहमदाबाद गया। वर्ष में २-३ महीने राजकोट आश्रम में रहता। यथासाध्य आश्रम के कार्य में सहायता करता। गर्मियों में आबू जाता, दो वर्ष – १९२९ तथा १९३० ई. में नहीं गया। १९२९ ई. की गर्मियों में निमंत्रण पाकर जूनागढ़ के पास समुद्र-तट पर स्थित मैंगरोल गया। बिलखा जाने के पहले ही गया था। वहाँ से लौटने के बाद १९३० ई. में बिलखा गया।

मैंगरोल एक सुन्दर स्थान है। शाह साहब यहाँ के दरबार हैं। ये ईरान के किसी विशेष पीर की सन्तान है और जूनागढ़ में स्थित अपने राज्य का भोग कर रहे हैं। उनकी मालगुजारी से ७-८ लाख और बन्दरगाह से ७-८ लाख की अतिरिक्त आमदनी थी। मैंगरोल के सेवानिवृत्त रेवेन्यू सुपरिंटेंडेंट श्री जयशंकर वासवड़ा तथा दीवान श्री कान्तिलाल वासवड़ा वहीं गर्मी बिताने का निमंत्रण देकर मुझे ले गये। उस बार वहाँ खूब आनन्द मिला और यह भी बोध हुआ कि छोटे-छोटे राज्यों में रहना सुरक्षित नहीं है और जितने दिन भारत में ऐसे राज्य रहेंगे, तब तक सामूहिक उन्नति नहीं हो सकती।

पहले जिनके मकान में रहने की व्यवस्था हुई थी, वे बनिये थे और उधर के एक प्रसिद्ध साधु के शिष्य थे। इस मकान में उन्होंने दो बार रुद्रयाग का अनुष्ठान किया था। एक बार उन्होंने महारुद्र करके एक लाख शिवलिंगों का एक छोटा पर्वतकार स्तूप बनवाया था। ये सज्जन श्रद्धालु थे और अपने बगीचे में अपने गुरु के लिए एक सुन्दर पक्की कुटिया अलग से बनवाई थी। वे साल में एक बार वहाँ आते थे। उसी कुटिया में मुझे रहने को दिया, परन्तु दो दिन बीतते ही पता चला कि उनकी आर्थिक अवस्था बड़ी खराब हो चुकी है। राज्य से उन्होंने सात हजार रुपये का ऋण लिया था और उसे न चुकाने के कारण नोटिस आया था कि एक महीने में मूल तथा ब्याज जमा न कराने पर सब कुछ नीलाम कर दिया जायेगा। और मूल अब ब्याज सहित चौदह हजार हो गया था। उनके उद्यान तथा मकान का मूल्य करीब पचास हजार होगा। वे वैष्णव थे, पर शैव-धर्म ग्रहण कर लेने के कारण कुटुम्बियों से उनका नाता टूट चुका था। सुनकर मुझे बड़ी चिन्ता हुई। ऐसे संकटग्रस्त व्यक्ति के मकान में नहीं रहा जा सकता, अत: एक धर्मशाले में चला गया। वहाँ जाकर पूछ-ताछ करने पर पता चला कि दरबार को वह मकान लेने की इच्छा है, इसीलिए कानूनी सलाह करके नीलाम का नाम दिया है। यह बात सभी लोगों को मालूम थी, इसलिए कोई

---

पिछले पृष्ठ का शेषांश

जीवात्मा और परमात्मा दोनों परम मित्र हैं। परमात्मा लोगों की दृष्टि की ओट में निवास करते हैं; उन्हें देखा नहीं जा सकता। तथापि जीव जब विपत्ति से घिर जाता है, तब वे उसे रास्ता दिखाने दौड़ आते हैं। जीवात्मा भोग-लालसा से इधर-उधर भाग-दौड़ करता है। वह अपने कर्म के फल से कभी सुख और कभी दु:ख पाता है। 'मैं-मेरा' का उसमें घोर अहंकार होता है। इसी अहंकार से उसमें कर्म-बन्धन आता है। इसके फलस्वरूप उसका एक जन्म के बाद फिर दूसरा जन्म होता है। और जन्म का अर्थ ही दु:स्वप्न है। दु:स्वप्न से हम लोगों को बड़ा कष्ट होता है; परन्तु नींद टूटने और जग जाने पर हम लोग कष्ट से छुटकारा पा जाते हैं। यदि हम मोह-निद्रा से जाग सकें, तो हमारे दु:खों का अन्त हो सकता है। संसार के प्रति अपने मोह से मुक्त होते ही मानव-जीवन के समस्त दु:खों का अन्त हो जाता है।

नारद ने अन्त में कहा – हे राजन्! तुम आसक्ति का त्याग करो। हिंसा से विरत होओ। पशु-वध आदि कर्मों के द्वारा स्वर्ग पाने की कामना मत करो। उससे तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। वही कर्म कर्म है, जिससे श्रीहरि सन्तुष्ट हों; वही विद्या विद्या है, जिससे श्रीहरि में मन लगे; सारी शक्तियों के आधार श्रीहरि ही मनुष्य के एकमात्र आश्रय हैं। वे ही जीव के सर्वाधिक अपने हैं। जो इसे जानते हैं, वे ही विद्वान् हैं। जो यथार्थ में विद्वान् हैं, वे ही गुरु हैं, वे ही श्रीहरि हैं।[१]

❖ (क्रमशः) ❖

१. स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि।
इति वेद स वै विद्वान्, यो विद्वान् स गुरुर्हरिः ॥ ४/२९/५१

भी नीलाम की बोली देने नहीं जायेगा। उसे बचाने का एक ही उपाय था – यदि नकद रुपये दे दिये जायँ। इस मकान में इतनी देवपूजा हुई है, इतने यज्ञ हुए हैं, शिव प्रतिष्ठित हैं और इसे मुसलमान दरबार ले लेंगे। वैसे आदमी वे अच्छे थे और कहा था उस स्थान को घिरवाकर अलग कर देंगे। काफी प्रयास के बाद भी इतने रुपये देने को कोई राजी नहीं हुआ। अन्त में, कभी-कभी मेरे पास आनेवाले एक लखपति व्यापारी इस शर्त पर रुपये देने को राजी हुए कि वह मकान तब तक उन्हीं के अधिकार में रहेगा, जब तक कि वे सूद समेत मूल धन नहीं लौटा देंगे; वैसे इस दौरान पूजा करने का अधिकार उन्हें रहेगा। इसमें मुझको और जयशंकर भाई को साक्षी रहना पड़ेगा। दीवान के भरोसे पर मैं राजी हुआ।

नीलाम होने के तीन-चार दिन पूर्व, एक दिन वे और उस मकान के मालिक चौदह हजार रुपये नकद तथा कुछ और भी साथ लेकर दरबार के दर्शन करने गये। परन्तु दरबार वणिक से तो मिले ही नहीं, इनके साथ मिले। इन्होंने प्रस्ताव किया – सब नकद देंगे। परन्तु दरबार ने स्पष्ट कह दिया – इस बात को छोड़कर और कुछ कहना हो, तो कहो। सात हजार के बदले में वह मकान उन्होंने हड़प लिया।

उन सज्जन को कोई आश्रय देना नहीं चाहता था – डर से धर्मशाले वालों ने भी मना कर दिया। अत: २-३ सन्तानों तथा पत्नी के साथ उन्हें रास्ते पर आना पड़ा। दरबार ने दया करके शरीर पर पहने हुए वस्त्र और हर एक को एक-एक थाली, एक-एक कटोरी और एक-एक लोटा, रसोई के लिए एक करछी, एक तवा, एक छोटा भगौना, बिछाने के लिए दो कम्बल और एक दरी ले जाने दिया, क्योंकि मकान पूरा-का-पूरा ही नीलाम हुआ था।

किसी को आश्रय न देते देख मैंने दीवान से कहा – "यह बड़ा अनुचित आदेश है। आप अपने बगीचेवाले मकान में जगह दीजिये और भोजन का प्रबन्ध कीजिये। डरिये मत। ऐसे आदमी की नौकरी न करना ही अच्छा है।" बनिया सम्पर्क में दीवान का गुरुभाई भी था, अत: जोर देकर कह सका। उन्होंने साहस करके उन्हें स्थान भी दिया और जितने दिन वहाँ थे, खाना भी दिया। इसी बीच किसी हितैषी ने अखबारों में यह बात लिख दी। हित की जगह अहित हुआ। दीवान तो पढ़ते ही दफ्तर से दौड़कर मेरे पास आये – "स्वामीजी, सर्वनाश ! यह देखिये उसको तो जेल भेजेंगे ही, और मैं भी गया; अब इस हालत में क्या करना उचित है?"

उनको बुलाकर सारी बातें समझाकर तत्काल रवाना होने की सलाह दी। पड़ोसी राज्य की सीमा में चार मील जाने पर अन्य राज्य की सीमा आ जाती है, वे आर्थिक सहायता लेकर चले गये। इसके बाद उनका क्या हुआ – भगवान ही जानें। यहाँ एक बात खेद के साथ लिखने को बाध्य हो रहा हूँ। उस विपत्ति में सहायता माँगने के लिए उस वणिक को मैंने उसके गुरु के पास भेजा। वे निकट ही – पोरबन्दर में थे। वे डेढ़ लाख रुपये नकद और तीन-चार लाख की सम्पत्ति के मालिक थे। इच्छा करने पर वे इस विपत्ति से अपने प्रिय शिष्य का उद्धार कर सकते थे। शर्त यह थी कि जब तक वह ऋण न चुका ले, मकान उन्हीं के अधिकार में रहेगा। अनिच्छा के बावजूद वे सज्जन वहाँ गये।

गुरुजी को विपत्ति की सारी बात ज्ञात थी। पहले तो उन्होंने मिलने से ही मना कर दिया। उसके बाद – क्यों आये हैं? आदि पूछवाने के बाद कहला भेजा कि यह सम्भव नहीं है, वे केवल इतना ही कर सकते हैं कि दरबार को पत्र लिखकर अनुरोध करें कि छह महीने की और मोहलत दी जाय। और पत्र भी वे हाथ में नहीं देंगे, यथासमय लिखकर डाक से भेजेंगे। वह भी इस भरोसे कि दरबार ने उन पर एक बार श्रद्धा दिखाई थी। शिष्य ने दर्शन के लिए बड़ा आग्रह किया, तो गुरुजी इस शर्त पर राजी हुए कि बात नहीं करेंगे, केवल प्रणाम करके चले जायेंगे। उन्होंने वैसा ही किया और बाद में आकर सजल नेत्रों से मुझे सब बताया। इस पर मुझे गुजरात के आखा भगत की बात याद आयी। उनके साथ भी उनके गुरु वैष्णव गोकुलनाथ ने ऐसा ही आचरण किया था। इसीलिए आखा ने उनको लिखा – गोकुलनाथ को गुरु बनाया मानो बूढ़े बैल की नाक में नकेल डाली। यह धन हरण करता है, लेकिन शंका-सन्देह दूर करने में समर्थ नहीं है। इस प्रकार का गुरु क्या कल्याण कर सकता है !

मैंगरोल से राजकोट लौटते समय मार्ग में मैंने जूनागढ़-गिरनार दर्शन किया और कुछ दिनों के लिए एक बार फिर जामनगर गया। फिर शीत काल तक राजकोट में ही रहा। उस बार बहुत ठण्ड पड़ी थी। नदी में बर्फ जम गई थी। बहुत-से लोगों की मृत्यु हो गई थी, परन्तु ईश्वर की इच्छा से ठण्ड के आरम्भ में ही पैदल काठियावाड़ का भ्रमण करने को निकल पड़ा। एक दिन सुबह भोजन करके कन्धे पर झोली व कम्बल लेकर रवाना हुआ। यह झोली महात्मा गाँधी के एक परमभक्त अनुरागी दम्पति ने स्वयं सूत कातकर, बुनकर तथा सिलाई करके दी थी – एकदम घर का बना हुआ खद्दर, पवित्र वस्तु ! गाड़ी में एक स्टेशन तक गये, साथ में फनी महाराज थे और झोली कन्धे पर थी।

गोंडल के मार्ग में रीवड़ा जाना था। रास्ता भूल जाने के कारण दोनों को बड़ी कठिनाई हुई। उसके बाद हम अपने गन्तव्य स्थान – वैरागियों के एक अखाड़े में पहुँचे। वहाँ से पहले दो-एक बार आश्रम-दर्शन के लिये निमंत्रण मिला था। इस योगायोग से दोनों का काम हुआ। सुबह उठकर फनी महाराज राजकोट लौट गये और मैं रह गया।

भोजन के बाद शाम को तीन मील दूर स्थित दरबार के

राजमहल में उपस्थित होकर उनका आतिथ्य स्वीकार किया। उनके कामदार ने कहा – "दरबार आपसे अगले दिन अपराह्न में ढाई-तीन बजे मिलेंगे, क्योंकि वे काफी रात तक भजन आदि करते हैं, अत: उठने में इतनी देरी होती है।" सोचा – "न जाने कितने बड़े भक्त होंगे!" अगले दिन जब उनसे भेंट हुई, तो जो देखा वह एक निशाचर की मूर्ति थी। बाद में पता चला कि सारी रात शराब तथा बाईजी के साथ बिताकर सुबह सोते हैं, इसीलिए उठने में इतनी देर होती है। मेरे साथ व्यवहार अच्छा ही किया, पूछा – क्या सेवा कर सकता हूँ? मैंने कहा – यदि इच्छा हो, तो राजकोट के आश्रम के लिए कुछ कीजिये। इस पर कुछ वर्षों तक उन्होंने प्रति वर्ष पाँच रुपये दिये थे। कहा था – और भी देंगे, परन्तु लेने के लिये किसी के न जाने के कारण देना नहीं हुआ। दरबार की वार्षिक आमदनी केवल लाख या सवा लाख होगी।

### गोंडल राजा का आतिथ्य

अगले दिन शाम को दरबार की व्यवस्था से गोंडल गया। शहर का बाहरी इलाका बड़ा सुन्दर था। सड़क तथा मकान – सब महाराजा ने बिलायती ढंग से बनवाये थे, मगर पुराना नगर स्वच्छ नहीं हो सका है, प्रयास कर रहे हैं।

गोंडल महाराजा एक अद्‌भुत व्यक्ति हैं। उनकी मालगुजारी से नेट आमदनी है चालीस लाख। इसके अलावा रेलवे है, मुम्बई के शेयर हैं, B.B.C.I. रेलवे में भी शेयर हैं। उनकी कुल आमदनी कम-से-कम एक करोड़ या उससे थोड़ी अधिक ही होगी। बड़े स्वाधीन स्वभाव के व्यक्ति हैं। राजा होने के बाद से किसी बड़े साहब को चाय तक नहीं पिलाई, राज्य में निमंत्रित करके नहीं बुलाया, यहाँ तक कि राजधानी में एक आधुनिक अतिथिगृह तक नहीं बनवाया, शायद इस भय से कि कहीं वे लोग आकर हाजिर हो जायँ। स्वदेशी माननीय व्यक्तियों के ठहरने के लिये उनकी एक साधारण-सी धर्मशाला है। उनके कानून आदि बहुत कड़े हैं। अतिथि के आने पर उसकी सारी जरूरतें पूछ ली जायेंगी – सुबह-शाम तक कितने कप चाय लगेगा? अतिथि जो बतायेंगे, यदि उससे अधिक की आवश्यकता हुई, तो मैनेजर वह तत्काल नहीं दे सकेगा। उन्हें पुन: आदेश लेना होगा। परन्तु फोन था, इसलिये वह सुविधा थी।

कुमारों का मासिक खर्च बँधा हुआ है – डेढ़ हजार से अधिक किसी का नहीं है और वह भी आवश्यकतानुसार ही व्यय किया जा सकता था। यदि अधिक की जरूरत हो, तो उसे प्राप्त करना उनके लिए बड़ा कठिन था। हुक्म था कि उन्हें उधार देनेवाला भी दण्ड का भागी होगा। इसीलिए एक कुमार सब्जी की खेती करके ऊपर से कुछ कमाते हैं।

यहाँ पर मैं एक अन्य घटना बताता हूँ – एक बार मैं राजकोट से कार में एक धनी मित्र के साथ फूलों के कुछ पौधे खरीदने गोंडल महाराजा की नर्सरी जा रहा था। नर्सरी में जाकर पौधे पसन्द करने के बाद सुपरिंटेंडेंट को बताने पर वे उन पौधों का मूल्य जानने के लिये दरबार के पास गये। फिर बगीचे में घूमते-घूमते पके हुए केलों का गुच्छा देख मेरे मित्र को उसमें से कुछ लेने की इच्छा हुई। यह बात उन्होंने माली से कही। माली एक हाथ लम्बी जीभ निकाल कर बोला – "बाप रे! मैं तो मारा जाऊँगा। उनके हुक्म के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। यही देखिए न! कल अमुक कुमार बगीचे में आये थे और अपने हाथ से तोड़कर केला खाया और अपने मित्र को भी दिया था। इसके फलस्वरूप उन्हें दण्ड मिला – 'एक महीने तक बगीचे में नहीं घुस सकते और उसके बाद दरबार की अनुमति के बिना यदि किसी पेड़-पौधे से फल या फूल तोड़ें, तो कुमार के साथ ही माली को भी दण्ड मिलेगा।' उनका सर्वत्र कड़ा हुक्म है, कड़ा कानून है।

वे स्वयं भी बड़ा सादा जीवन बिताते हैं। स्वयं मद्यपान नहीं करते और स्वजाति के अतिथि को भी नहीं पीने देते। दादा के जमाने की एक चाँदी की घोड़ागाड़ी है, रियासत का विशेष काम होने पर उसी में जाते हैं। टी-माडल की पुरानी फोर्ड कार थी। उसके बिगड़ जाने पर अब पाँच सीटोंवाली एक साधारण गाड़ी ली है। दूर जाना हो, तो उसी में जाते हैं। घर तथा दफ्तर में अधिकांश कुर्सियाँ-मेजें पुराने जमाने की हैं। खूब आवश्यक होने पर अपनी देखरेख में यूरोपियन पैटर्न की अद्‌भुत चीजें बनवाते हैं – डिजाइन, फिनिशिंग आदि सब उच्च कोटि का होता है। वे स्वयं (स्काटलैंड में स्थित) ग्लासगो विश्वविद्यालय के छात्र थे – वहाँ से इन्हें आनरेरी डाक्टरेट की डिग्री मिली हुई है, अंग्रेजी में आयुर्वेद औषधियों का इतिहास लिख रहे हैं। बिलायत में चिकित्सा-विज्ञान पढ़ा था और इंजिनियरिंग भी सीखी थी, इसलिये भवन, सड़क तथा पुल – सबका नक्सा स्वयं बनाकर अपने निर्देशानुसार ही निर्माण कराते हैं। सब कुछ सुन्दर, सुनियोजित और सुदृश्य होता है! उनका वनस्पति-उद्यान (Botanical Garden) भी देखने की चीज है। जितने तरह के औषधीय पेड़-पौधों को प्राप्त करना सम्भव था, उन्हें संग्रह करके लगा रखा है। हर गाँव में मोटर-गाड़ियाँ जाने के योग्य उच्च कोटि की पक्की सड़कें हैं, टेलीफोन है, गाँव के स्कूलों के सुन्दर पक्के भवन हैं और बड़े गाँवों में चिकित्सालय भी है।

सारे गुजरात-काठियावाड़ में गोंडल की प्रजा ही सर्वाधिक सुखी है। बाप-दादों के समय से ही उपज का पाँचवाँ हिस्सा टैक्स के रूप में देना पड़ता है; और कोई कर नहीं है। राज्य के अन्दर मुक्त-व्यवसाय चलता है। इसी से चालीस लाख की आमदनी है। जो कुछ मिलता है, उसका प्राय: सब वे स्कूलों, चिकित्सालयों तथा सड़कों पर खर्च कर देते हैं।

गोंडल की सड़कें भारत की सर्वश्रेष्ठ सड़कें हैं – जो भी

जाता है, यही कहता है और यही सत्य भी है। गोंडल का किसान हलधर किसान है – लखपती हो तो भी स्वयं हल चलाता है। राज्य के एक नगर में किसानों की एक नयी बस्ती देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। उसका कोई भी मकान पचास हजार से कम खर्च पर नहीं बना है। यहाँ तक कि पाटलानी अर्थात् किसान की गृहिणियों के लहँगों की किनारी पर सोने के गोटे का काम होता है। वे दो-तीन हजार के गहने पहनकर खेतों में काम करती हैं। क्या वह दर्शनीय दृश्य नहीं होगा ! राजा स्वयं खूब साधारण पोशाक पहनते हैं और देखने में साधारण काठियावाड़ी गृहस्थ लगते हैं। शरीर में साबुन नहीं लगाते, रीठे का प्रयोग करते हैं। उनके कपड़े-लत्ते भी रीठे से धोये जाते हैं। पिछले पचास वर्षों के दौरान उनके शरीर पर एक फुंसी तक नहीं हुई। कहते हैं – "भगवान ने स्वयं ही जो प्राकृतिक साबुन बना रखा है, वही शरीर के लिए उत्तम है।" वे कंजूस नहीं हैं। इसका प्रमाण मिलता है – बिहार तथा कोयटा के भूकम्प के समय उन्होंने ही सर्वप्रथम एक लाख रुपये और उनकी रानियों ने कुल मिलाकर ढाई लाख रुपये दान किये थे। कोयटा में डेढ़ लाख दिया था। यह दान करके उन्होंने बाकी राजा-महाराजाओं को लज्जित कर दिया था। अपने राज्य में भले कार्यों के लिए वे काफी दान करते रहते हैं।

परन्तु वे कोई दोषरहित व्यक्ति नहीं है। लोगों कहते हैं कि उनमें कुछ दोष भी हैं। तो भी, उनके जो गुण हैं और अपने राज्य की उन्नति के लिए उन्होंने जो कुछ किया है, उनका निर्भीक स्वाधीन स्वभाव, आडम्बर-हीन जीवन, राजाओं के आम दोषों से रहित, शिकार तथा मदिरा पार्टी से दूर रहना – नि:सन्देह ये वरणीय गुण हैं। ये गुण अधिकांश राजाओं में नहीं मिलते। यदि ये गुण उनमें होते, तो भारत का स्वरूप ही बदल जाता। उनका अनुकरण करके मोर्वी (काठियावाड़) के महाराजा श्री लछबीर सिंहजी ने भई अपने राज्य में सड़कों आदि की व्यवस्था की है।

## जेतपुर, बड़िया और लाठी

गोंडल में तीन रात रहकर जेतपुर गया। यह काठियावाड़ का एक विशाल तथा पुराना नगर है। वहाँ रात भर ठहरकर एक वृद्ध संन्यासी स्वामी नित्यानन्द के दर्शनार्थ जेतपुर से ढाई-तीन मील दूर वहाँ के दरबार मुलुवाला के गढ़ – पीठड़िया गया। उनकी सुख्याति सुन रखी थी, परन्तु अस्वस्थ होने के कारण केवल उनके दर्शन ही हुए, वार्तालाप नहीं हो सका। दरबार एक चतुर व्यक्ति हैं – काठी-शिरोमणि। राज्य के सारे जुआरियों तथा पक्के चोरों के अड्डे उनके गढ़ के पास ही थे। आमदनी केवल चार-पाँच लाख थी, पर उनके पास महँगी-महँगी पचास मोटर-गाड़ियाँ थीं। और सरकारी अफसरों को कभी भोज दिया जाता है, तो कभी घोड़ा और कभी मोटर कार उपहार में दी जाती है। सब सोचते हैं कि इतना कैसे सम्भव हो पाता है? सरकारी (एजेंसी के) दफ्तरी से लेकर सभी लोग मुलुवाला बापू की जय-जयकार करते रहते हैं।

## गृही भक्त जगजीवन राम

जैतपुर से बड़िया गया। यह भी एक छोटे १२ गावों के काठी राजा की राजधानी थी। बड़िया के पास उससे लगभग एक मील दूर एक गाँव है, जहाँ एक विख्यात गृहस्थ भक्त निवास करते हैं – भक्त जगजीवन राम। उनके यहाँ जाकर दो सप्ताह से भी अधिक काल रहा। वे सचमुच ही बहुत बड़े भक्त हैं, बहुत-से साधु-फकीर उनके यहाँ आते हैं। उनका देवालय सिर्फ एक छप्पर डालकर बना है। वहीं सभी के लिये स्थान है। वे स्वयं विष्णुभक्त वैश्य थे, तथापि अन्य सम्प्रदायों के लिये भी वहाँ स्थान था और किसी संन्यासी के आने पर उन्हें खूब सम्मान सहित रखते हैं। अच्छा साधु होने पर उसे जाने ही नहीं देते, कहते हैं – "रहिये, यहीं पर भजन कीजिये।" जमीन से धान मिलता है, परन्तु आय अल्प है, इसीलिए प्रतिदिन भोजन में रहती – बाजरे की मोटी रोटियाँ, उड़द की दाल और पतला खट्टा छाछ। इसके साथ बहुत हुआ तो एक हरी मिर्च का अचार। (हरी मिर्च को नमक से साथ नीबू के रस में डुबाकर इसे बनाते हैं।) बस, यही वे स्वयं खाते हैं और अतिथियों को भी खिलाते हैं। सर्वदा धर्मचर्चा करते रहते हैं। अन्य कोई व्यर्थ की बातें नहीं होती। सदानन्दी पुरुष हैं। भाइयों का धान का व्यवसाय है। इनके साथ कुछ दिन बड़े आनन्दपूर्वक था। देखा कि दूर-दूर से साधु-संन्यासी आकर उनके इस छोटे-से आश्रम में उपस्थित होते हैं और उनमें से प्रत्येक सन्तुष्ट होकर जाते हैं। धन्य हो भक्त जगजीवन !*

बड़िया से लाठी गया। यह भी बारह गाँवों का एक छोटा-सा राजपूत राज्य है। यहाँ के एक राजा कलापी बड़े उच्च कोटि के कवि हुए हैं। उनकी कवित्व-शक्ति अद्‌भुत थी। वे गुजराती भाषा को नया रूप दे गये हैं। वे सूफी भावापन्न थे और सूफी कवियों के भाव लेकर फारसी मिश्रित भाषा में नवीन छन्दों में इतनी मधुर शैली में काव्य-रचना की कि उसे पढ़कर मुग्ध हो जाना पड़ता है।

लाठी की ठाकुरबाड़ी में दो हफ्ते रहा। वहीं राजकोट के ठाकुर साहब श्री लाखाजी राज के देहान्त की सूचना मिली। राजकोट के हरीशंकर पण्ड्या ने कहला भेजा कि वे 'लीला-प्रसंग' का गुजराती अनुवाद शुरू करने को राजी हैं और मुझे भाड़ा देने को तैयार थे, ताकि मैं शीघ्र ही राजकोट लौटकर उनकी सहायता कर सकूँ। मैंने भाड़ा लिया नहीं, क्योंकि और भी थोड़ा भ्रमण करने की इच्छा थी। ❖ **(क्रमश:)** ❖

* भक्त जगजीवन के विषय में और भी सामग्री – द्रष्टव्य – रामकृष्ण मठ, नागपुर से प्रकाशित 'मानवता की झाँकी', पृ. ४७-५२

# नारदीय भक्ति-सूत्र (१७)

*स्वामी भूतेशानन्द*

(रामकृष्ण संघ के बारहवें अध्यक्ष स्वामी भूतेशानन्द जी ने अपने १० वर्षों के जापान-यात्राओं के दौरान वहाँ के करीब ७५ जापानी भक्तों के लिये अंग्रेजी भाषा में, प्रतिवर्ष एक सप्ताह 'नारद-भक्ति-सूत्र' पर कक्षाएँ ली थीं। उन्हें टेप से लिपिबद्ध और सम्पादित करके अद्वैत आश्रम द्वारा एक सुन्दर ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया गया है। वाराणसी के श्री रामकुमार गौड़ ने इसका हिन्दी अनुवाद किया है। – सं.)

**तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम् ।।४२।।**

अन्यवयार्थ – **तत्-एव** – केवल वही (साधुसंग) **साध्यताम्** प्राप्त कीजिये।

अर्थ – केवल उसी (साधुसंग) को अवश्य प्राप्त करो।

साधुसंग के महत्त्व विषयक चर्चा जारी रखकर इस ४२वें सूत्र में इसका उपसंहार किया गया है। इस सूत्र में (तदेव साध्यताम् की) पुनरावृत्ति जोर देने के लिये है।

नारद कहते हैं कि भले ही हमें साधुसंग मिल जाय, किन्तु यह सहज-लभ्य नहीं है, यह केवल भगत्वकृपा द्वारा ही मिलता है। अत: केवल साधुसंग यथेष्ट नहीं है। मानसिक अर्थात् आध्यात्मिक संग भी होना चाहिये। उसके बिना किसी महात्मा के सामीप्य मात्र से कोई लाभ नहीं मिलता। अत: यह साधुसंग हर किसी को सहजलभ्य नहीं है, यहाँ तक कि सन्त के घनिष्ठ सम्पर्क में रहनेवालों को भी नहीं। द्वितीयत: यह अबोधगम्य है। हम नहीं जान पाते कि यह संग व्यक्ति में उसके अनजाने ही कैसे परिवर्तन ला देता है। वह इसे नहीं समझ पाता, नहीं जान पाता, पर इसके द्वारा उसमें बिना किसी चेष्टा के सहज ही परिवर्तन आ जाता है। वह जान भी नहीं पाता कि कैसे रूपान्तरित हो रहा है, तो भी निश्चित रूप से सतत् परिवर्तन आता है। इसका अमोघ फल होता है। इसका ऐसा प्रभाव होता है कि कभी व्यर्थ नहीं जा सकता। साधुसंग प्राप्त करनेवाले व्यक्ति में यह हमेशा महान् ईश्वर-भक्ति के उद्दीपन का फल उत्पन्न करती है। इसलिये यह पराभक्ति या परमभक्ति एकमात्र कृपा द्वारा ही प्राप्त हो सकती हैं। भले ही हम शुरुआत में इसका अनुभव न करें। परन्तु अन्तत: इसका फल अवश्य मिलता है और यह भगवत्कृपा से ही होता है। यहाँ तक कि सन्तकृपा को भी अन्य रूप में भगवत्कृपा कहा जा सकता है। एकमात्र भगवत्कृपा द्वारा ही हम महात्माओं का संग प्राप्त कर सकते हैं अथवा योग्यता न होते हुए भी स्वयं में रूपान्तरण ला सकते हैं। भगवत्कृपा द्वारा ही साधुसंग मिलता है। ऐसा इसलिये है कि ईश्वर तथा उनके अनुरागी साधुजनों में कोई भेद नहीं होता। ईश्वर तथा उनके अनुरागी भक्त एकरूप ही होते हैं। जब कोई व्यक्ति उस स्तर का ईश्वरीय-बोध प्राप्त कर लेता है, तो वह ईश्वर के साथ एकाकार हो जाता है, अत: उसकी संगति का अर्थ होता है – दिव्य परम सत्य या स्वयं ईश्वर की संगति। तब उन महात्मा की कृपा का अर्थ होता है ईश्वर की कृपा। अत: अन्तोगत्वा, भगवत्कृपा ही हमारे चित्त में भक्ति उत्पन्न करती है। यही नारद की चरम शिक्षा है।

भाव यह है कि मान लीजिये कोई व्यक्ति किसी साधु के सम्पर्क में आया और इसके फलस्वरूप वह स्वयं साधु बन गया। यह पूर्णरूप से सहज और स्वाभाविक भी है। तथापि यह ध्यान रखना होगा कि साधु की कृपा एक अन्य रूप में भगवत्कृपा ही है। यह कृपा उनके किसी यंत्र के माध्यम से प्रवाहित होती है और वह यंत्र भी ईश्वर के साथ एकाकार होता है। अत: ईश्वर की कृपा और साधु की कृपा में कोई भेद नहीं है। इसलिये नारद कहते हैं – एकमात्र उसी (भगवत्कृपा) का आश्रय लो, अर्थात् भक्ति रूपी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये जो भी अनुकूल हो, हमें उसी का अनुसरण करना चाहिये। नारद मानो इस बात पर बल देते हैं कि व्यक्ति जिन साधनों के द्वारा वह परमभक्ति प्राप्त करके धन्य हो सकता है, उसे उनका सहारा लिये बिना अपना मूल्यवान जीवन नहीं गवाँ देना चाहिये। नारद जोर देने के उद्देश्य से इसे दुहराते हैं, यह मानो ऐसा कथन है, "इसे तत्काल करो, तत्काल करो!" उनका अभिप्राय यह है कि हमें अपना समय बरबाद नहीं करना चाहिये। यह सकारात्मक पक्ष है।

**दुस्सङ्गः सर्वथैव त्याज्यः ।।४३।।**

अन्यवयार्थ – **दुस्सङ्गः** – दुष्टों का संग, **सर्वथा-एव** – सभी प्रकार से, **त्याज्यः** – त्याज्य है।

अर्थ – दुष्टों का संग सभी प्रकार से त्यागने योग्य है।

इसके निषेधात्मक पक्ष में नारद कहते हैं कि कुसंग से सर्वथा दूर ही रहना चाहिये। अर्थात् साधुसंग का आश्रय लेना चाहिये और बुरे लोगों से दूर रहना चाहिये। क्यों दूर रहना चाहिये? नारद इसकी व्याख्या अगले सूत्र में करते हैं।

**काम-क्रोध-मोह स्मृतिभ्रंश बुद्धिनाश-सर्वनाश-कारणत्वात् ।।४४।।**

अन्यवयार्थ – **काम** – कामवासना, **क्रोध** – क्रोध, **मोह** – आसक्ति, **स्मृतिभ्रंश** – भगवान की स्मृति का लोप, **बुद्धिनाश** – तर्कबुद्धि का नाश, **सर्वनाश** – सम्पूर्ण नाश, **कारणत्वात्** – के कारण।

अर्थ – ऐसा इसलिये है, क्योंकि (दुष्टों की संगति से) काम, क्रोध, आसक्ति, ईश-स्मरण का लोप, बुद्धि का नाश

और अन्ततः सर्वनाश हो जाता है।

**तरङ्गायिता अपीमे संगात् समुद्रायन्ते ।।४५।।**

अन्वयवर्थ – **तंरगायिता** – तरंग के रूप में उत्पन्न होकर, **अपि** – भी, **इमे** – ये (बुराइयाँ), **संगात्** – दुष्टों के संग से, **समुद्रायन्ते** – समुद्र बन जाती हैं।

अर्थ – अपवित्र लोगों की संगति के कारण, ये चीजें प्रारम्भ में केवल तरंग के रूप में प्रकट होकर भी, क्रमशः समुद्र के रूप में बदल जाती हैं।

कुसंग का इसलिये त्याग करना चाहिये, क्योंकि यह काम, क्रोध, मोह, ईश्वर-स्मरण के लोप, विवेक-बुद्धि के नाश आदि का कारण है। दुष्ट लोगों का संग ही इन सबका कारण होता है। यह हमारे भीतर काम का उद्रेक करता है, यह हममें क्रोध उत्पन्न करता है, यह मोह पैदा करता है और यह हमारी ईश्वर-स्मृति का लोप करा देता है – ये सभी बातें कुसंग द्वारा होती हैं। नारद इन बातों पर काफी बल देते हैं।

समस्या यह है कि कभी-कभी हम उदार दृष्टिकोण अपना लेते हैं। मान लो कोई दुष्ट व्यक्ति है। हम तर्क करते हैं कि 'हम क्यों उसका त्याग करें? यदि वह दुष्ट है तो उसे वैसा ही रहने दो। हमें उससे कोई सरोकार नहीं रखना है।' भले ही हम ऐसे व्यक्ति के संग के इच्छुक नहीं हैं, पर कभी-कभी उसे सहन करते हैं। नारद इसके भी विरुद्ध हैं। क्योंकि आज हम उसे सहन करेंगे, कल उससे प्रभावित होंगे और उसके बाद उसे पसन्द करने लगेंगे। कुसंग इसी प्रकार क्रमशः हमें दुष्ट बना देता है। जैसे साधुसंग हममें भक्ति का उद्रेक करता है, वैसे ही कुसंग से काम, क्रोध, मोह आदि उत्पन्न होते हैं और ये सारी दुष्प्रवृत्तियाँ हममें कुसंग के द्वारा ही आती हैं।

गीता में कहा गया है कि आसक्ति के द्वारा ही कामना पैदा होती है। यदि हम प्रलोभक वस्तुओं के बीच रहें, तो भले ही तत्काल उनका प्रभाव न हो, पर क्रमशः वे मन पर अपनी छाप छोड़ जाती हैं और आगे चलकर हम अनजाने ही काम-क्रोध आदि से पूर्ण एक संसारी व्यक्ति बन जाते हैं।

इसलिये, बड़ी सावधानी से देखना है कि हम ऐसे कुसंग को छोड़ रहे हैं या नहीं। यह थोड़ा अनुदार प्रतीत हो सकता है, पर ईश्वरानुरागी साधक की सुरक्षा के लिये यह जरूरी है – पूरी तरह जरूरी है कि ऐसे कुसंग को त्याग दिया जाये।

जब कोई व्यक्ति भक्तिमार्ग पर एक उच्च स्तर पर उन्नीत हो चुका हो, तो ऐसा कुसंग उसे कुछ प्रभावित नहीं कर सकता। तो भी, प्रारम्भ में एक ईश्वरानुरागी साधक के रूप में उसे कुसंग से दूर रहने हेतु सावधान रहना चाहिये, अन्यथा उसका मन अवश्य ही अधोगामी हो जायेगा। यहाँ इसी बात पर बल दिया गया है।

कुछ बातों में हम दयालुता नहीं दिखा सकते और ऐसा नहीं कह सकते कि 'मुझे व्यावहारिक रहना है। मैं कुसंग से दूर नहीं रह सकता, अतः मैं इस कुमार्गी व्यक्ति के साथ रहते हुए भी सावधान रहूँगा, ताकि मुझ पर उसका प्रभाव न पड़ सके।' यह एक व्यावहारिक दृष्टिकोण हो सकता है, पर यह व्यावहारिकता अन्ततः हमारा सर्वनाश कर देगी, क्योंकि क्रमशः अनजाने ही हमारे मन पर उसकी छाप पड़ने लगेगी। यह प्रभाव इतना प्रबल होता है कि यह क्रमशः हमारे भीतर प्रविष्ट होकर हमारा रूपान्तरण कर देता है। जैसे अच्छाई मनुष्य को अच्छा बना देती है, वैसे ही बुराई या कुसंग भी व्यक्ति को अनजाने ही कुमार्गी बना देता है। चरम अपवाद के रूप में जब व्यक्ति अच्छाई और बुराई से बहुत ऊपर उठ कर ईश्वर-प्रेम में निमग्न हो जाता है, केवल तभी ऐसा कुसंग उसे प्रभावित नहीं करता। इसके विपरीत, ईश्वरप्रेमी साधुजनों का प्रभाव कुमार्गी को भी क्रमशः रूपान्तरित कर देगा।

तथापि एक साधारण साधक को हर प्रकार से सावधान रहना है, ताकि वह कुसंग से प्रभावित न हो सके। अन्यथा उसकी अवस्था निम्नगामी हो जायेगी और वह भगवत्पथ से दूर चला जायेगा। नारद इस बात पर बहुत जोर देते हैं। प्रारम्भ में किसी व्यक्ति में काम, क्रोध आदि समुद्र की लघु तरंगों के रूप में उठते प्रतीत हो सकते हैं, परन्तु ऐसे कुमार्गी लोगों की संगति से वे प्रबल होते जाते हैं।

भक्त के मन में अच्छी और बुरी, सभी तरह की प्रवृत्तियाँ हो सकती हैं। बुरी प्रवृत्तियाँ प्रसुप्त अवस्था में रहती हैं। उन्हें निष्क्रिय समझा जा सकता है – ऐसी दुष्प्रवृत्तियाँ उसके मन को नहीं बदल सकतीं और उसे अधिक प्रभावित नहीं कर सकतीं। इन तरंगों के उठने तथा मिटने के समय वह मानो द्रष्टा बना रहता है। गीता में भी यही शिक्षा दी गई है। ये प्रवृत्तियाँ रह सकती हैं, परन्तु भक्त यदि सजग और उन्नत दृष्टिकोण वाला हो, तो ये लघु तरंगे केवल लघु तरंगों के रूप में ही रह जायेंगी – वे मन में निष्क्रिय ही रहेंगी क्रमशः नष्ट हो जायेंगी। वे साधक को परिवर्तित नहीं कर पातीं, उसे उसके मार्ग से च्युत नहीं कर पातीं या उसे ईश्वर-चिन्तन से विमुख नहीं कर पातीं।

कहा गया है – "कुसंग में रहते समय हमें उस व्यक्ति से सावधान रहना चाहिये, क्योंकि यह कुसंग हमारी छोटी तरंगों को समुद्र में रूपान्तरित कर देगा।' अर्थात् हमारा काम-क्रोध-मोह आदि इतना बढ़ जायेगा कि हम उन्हें नियंत्रित करने में समर्थ नहीं हो पायेंगे। इसलिये व्यक्ति को सजग रहना होगा और हर प्रकार से कुसंग का त्याग करना होगा। ऐसा सोचना कभी भी नहीं उचित नहीं है कि उसके प्रभाव से बचने के लिये उसमें पर्याप्त बल है। ऐसी लापरवाही हमारा सर्वनाश कर देगी। ❖ **(क्रमशः)** ❖

१. सङ्गात् संजायते कामः। (गीता, २/६२)

# ईशावास्योपनिषद् (१५)

*स्वामी सत्यरूपानन्द*

(प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने वर्षों पूर्व रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सत्संग-भवन में दिया था। इसका टेप से अनुलिखन पूना की सीमा माने ने किया तथा वक्ता की पूर्ण सहमति से इसका सम्पादन एवं संयोजन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है।)

वर्तमान केवल आनन्द का क्षण है। जब हम शोक और मोह में पड़ते हैं, तब वर्तमान नष्ट हो जाता है। वर्तमान इसलिए मिला था कि इस वर्तमान में हम ईश्वर का स्मरण करें, अपने स्वरूप का चिन्तन करें, अपने कर्तव्यों को निष्काम होकर करें, जिससे हमारे मन में आनन्द की धारा बहती रहे। जो व्यक्ति वर्तमान में रहने का प्रयत्न करता है, उसके जीवन में शोक और मोह को अवसर नहीं मिलता है। भले ही हमें आत्मानुभूति नहीं हुई, किन्तु हम अपने मन को वर्तमान में रखने का प्रयत्न करें, तो हमारे जीवन में शोक और मोह नहीं आयेंगे। जैसे ही शोक और मोह का अभाव होता है, वैसे ही जीवन में परम-प्राप्ति हो जाती है। इसे इस उदाहरण से समझना सरल होगा। जैसे एक शुद्ध जल का झरना है। उस झरने का मुँह घृणा रूपी पत्थर से बन्द है। उस झरने में शोक और मोह के पत्थर डाल दिये गये हैं। वह झरने का जल अमृत-स्वरूप तो है, वह हमारी प्यास बुझा सकता है, किन्तु उस जल का हम वर्तमान में उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। इसलिए वर्तमान में रहने का प्रयत्न अपने आप में एक बड़े आनन्द की अनुभूति देता है।

एक दूसरा दृष्टान्त देखें – जब हमें पुस्तक लेने की इच्छा होती है, तब हम उसे पाने की चेष्टा करते हैं। पुस्तक मिल जाने पर हमारी इच्छा पूर्ण हो जाती है। एक इच्छा समाप्त हुई और दूसरी इच्छा अभी नहीं आयी है और जब तक दूसरी इच्छा जागृत नहीं होती है, वह जो क्षण है, वही आनन्द की अवस्था है। यदि इस अवस्था को बढ़ाया जा सके तो आदमी बड़े आनन्द में रह सकता है। यह अवस्था केवल वर्तमान में ही आ सकती है। यदि वर्तमान में रहने का अभ्यास हो जाय, तो उस समय वह जो कर्म करता है वह मन-प्राण देकर करता है। इसलिए उसके जीवन में चिन्ता नहीं रहती है तथा शोक और मोह उसके जीवन में नहीं आते हैं।

जब तक हमको आत्मानुभूति नहीं हो जाती तब तक हम इस एकता का अनुभव नहीं कर सकते। आत्मा और परमात्मा में क्या अन्तर है? जब हम उस चैतन्य सत्ता की खोज भीतर करते हैं और हमें उपलब्धि होती है, वही आत्मा है। जब हम उस चैतन्यसत्ता का बाहर-भीतर सर्वत्र अनुभव करते हैं, उसी का नाम परमात्मा है। किन्तु यह स्मरण रखना होगा कि परमात्मा के खोज की यात्रा आत्मा से ही प्रारम्भ होती है। जब तक अपने अन्त:करण में आत्मा की अनुभूति नहीं होती, तब तक हमें विश्व-ब्रह्माण्ड में उस परमात्मा के दर्शन नहीं हो सकते। इसलिए आत्मानुभूति के प्रयत्न से ही परमात्मा की प्राप्ति की यात्रा प्रारम्भ होती है।

अगले आठवें मन्त्र में ऋषि हमें उस आत्मा की सर्वव्यापकता तथा उसके लक्षणों आदि के बारे में बता रहे हैं –

**स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।**
**कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधा-च्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।८।।**

– वह परमात्मा सर्वव्यापी, तेजोमय, अशरीरी, व्रणहीन और स्थूल शरीररहित है। वह शुद्ध, पापरहित, क्रान्तदर्शी, मनीषी, सर्वनियन्ता, स्वयंभू, शाश्वत और अनादि काल से यथायोग्य इस जगत का स्रष्टा है।

इस मन्त्र में आत्मा के ग्यारह लक्षण बताये गये हैं। वह परमात्मा शुक्रम् – तेजोमय है। अकायम् – वह अशरीरी है, उसका स्थूल-सूक्ष्म-कारण कोई भी शरीर नहीं है। अव्रणम् – उसमें कोई व्रण, घाव नहीं है। अस्नाविरम् – वह शिराओं से रहित यानि उसका स्थूल भौतिक शरीर नहीं है। शुद्धम् – वह प्रकृति से अस्पृष्ट है, शुद्ध है। अपापविद्धम् – वह पुण्य या पाप से बँधता नहीं। पर्यगात् – वह सर्वव्यापी है। कवि: – वह क्रान्तदर्शी है, सर्वद्रष्टा है, सब कुछ जाननेवाला है। मनीषी – वह मनन करनेवाला है, मन का स्वामी है। परिभू: – वह सबका नियन्ता है। स्वयंभू – वह स्वयं उत्पन्न होने वाला है। शाश्वतीभ्य: समाभ्य: – वह अनंत काल से जैसा चाहिए वैसा ही, व्यदधात् – इस सृष्टि की रचना करता है।

यहाँ इतने विस्तार से ऋषि क्यों कहते हैं? क्योंकि हमारी देह-बुद्धि इतनी प्रबल है कि ऋषि के बार-बार कहने पर भी हम भूल जाते हैं। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, जैसे दीवार पर बिजली के स्वीच आदि के लिए लकड़ी का बोर्ड लगाया जाता है। यदि बिजली में कुछ दोष उत्पन्न हुआ, तो बिजली मिस्त्री आकर उस बोर्ड के स्क्रू को खोलकर, उसके दोष को ठीक करके, पुन: उस बोर्ड को स्क्रू से कसकर लगा देता है। किन्तु अगर आपने देखा हो, तो आपको याद होगा कि पहली बार जब वह स्क्रू को लगाता है, तो इतनी सरलता से वह नहीं लगता। वह पहले उसमें छोटा-सा छेद कर देता है। फिर उसके अन्दर स्क्रू लगाकर, स्क्रू ड्रायवर से बड़े परिश्रम से घूमा-घूमाकर उसे कसता है। उसके घूमाने से स्क्रू

द्वारा उस लकड़ी के भीतर छेद, खाँचा हो जाता है। तब दूसरी बार वह स्क्रू आसानी से लग जाता है। हमारे मन में भी संसार का यह छिद्र, खाँचा इतना अधिक बना हुआ है कि हम पचास बार आध्यात्मिक गीता आदि का श्लोक पढ़ते हैं, सौ बार सुनते हैं, किन्तु उसे भूल जाते हैं। किन्तु यदि कहीं झगड़ा चल रहा हो और कोई गालियाँ बक रहा हो, और यदि हमने एक भी गाली केवल एकबार सुनी हो, तो वह पूरी जिंदगी भर याद रह जाती है। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि हमारे मन में उसके लिये जगह बनी हुई है। जन्म-जन्मान्तर से संसार के संस्कार उस पर हैं। वे संस्कार हमारे भीतर तुरन्त समा जाते हैं। वर्तमान पत्र में कुछ समाचार पढ़ा, तो वह सजीव रूप में हमारे मन पर छा जाता है। ईश्वर का कोई नाम गुण हो तो वह ऐसे नहीं समाता। यदि कॉमेंट्री सुन रहे हों, किसी नट-नटी का वर्णन सुन रहे हों, तो उसका सजीव चित्र मन में समा जाता है। क्योंकि उसके लिए वहाँ जगह बनी हुई होती है। इसलिये अब हमें परिश्रम पूर्वक आध्यात्मिक बातों के लिए भी मन में जगह बनानी पड़ेगी। तब ये सब सुनते ही हमारे मन में तत्काल समा जायेंगी।

ऋषि कहते हैं, वह आत्मा स्वयंभू है। वह स्वयं बना हुआ है। उसकी उत्पत्ति का कोई कारण नहीं है। वह अपने अस्तित्त्व के लिए स्वनिर्भर (Self Caused) है। यदि हम स्वयंभू परमात्मा को स्वीकार नही करेंगे तो विश्व के किसी भी विचार के द्वारा हम किसी तत्त्व तक नहीं पहुँच सकेंगे। इस संसार को किसने बनाया? यह प्रश्न उठा। इसे ईश्वर ने बनाया। तो फिर इस ईश्वर को किसने बनाया? उसके ऊपर और कोई ईश्वर है, उसने बनाया। यह और कौन है, उसे किसने बनाया? इस प्रकार अनंत काल तक आप प्रश्न करते रहेंगे, तो भी इसका उत्तर नहीं मिलेगा। तो एक तत्त्व ऐसा स्वीकार करना ही पड़ता है, जिसको किसी ने भी नहीं बनाया है, जो अपने ही अस्तित्व से अस्तित्वान है, (Self Caused) ऐसा जो आत्मा है, वह स्वयंभू है। यह स्वयंभू परमात्मा शाश्वत है। यदि वह स्वयंभू परमात्मा सदैव विद्यमान नहीं होगा, तो उसके अभाव का दोष आ जायेगा। नहीं होना और उत्पन्न होने का दोष स्वयंभू में नहीं होता, इसलिए वह अजन्मा है, अनिर्मित है। वह अजर, अमर है, इसलिए वह स्वयंभू तत्त्व अपरिवर्तनशील होगा। वह जड़ नहीं हो सकता। जड़ तो निर्मित है। इस सारी प्रकृति को विज्ञान भले ही कहे कि इसे किसी ने नहीं बनाया, किन्तु आप विचार करके देखें, तो संसार में प्रत्येक वस्तु बनाने के पीछे कोई-न-कोई कहीं अवश्य रहता है, उनके बिना हो ही नहीं सकता। अगर इसे किसी ने नहीं बनाया है, तो इस जड़ पदार्थ के नियमानुसार एक पत्थर को दूसरा पत्थर उत्पन्न नहीं करता है। पर एक बीज से अनेक वृक्ष उत्पन्न होते हैं। एक प्राणी से दूसरा जीवित प्राणी उत्पन्न होता है। इसके पीछे कोई चेतन शक्ति अवश्य है वह ज्ञानमय है, वह स्वयंभू है। चैतन्य कभी जड़ नहीं हो सकता। स्वयंभू की धारणा ने विज्ञान की चुनौती को स्वीकार करने की शक्ति दी है। हमारा हिन्दू वेदान्त-दर्शन विज्ञान की सारी चुनौतियों का उत्तर देता है।

अभी ऑस्ट्रेलिया में क्लोनिंग की बहुत चर्चा हुई। बिना भेड़-भेड़ियों के मिलन से एक बच्चा पैदा हुआ, तो बहुत शोर मच गया। कुछ पत्रकार मुझे इसके बारे में पूछने लगे, किन्तु मुझे इसके बारे में ज्यादा कुछ लगा नहीं। पत्रकार तो चौंक गये कि इतना हल्ला-गुल्ला हो रहा है कि आज भेड़ियों के बच्चे बनाये, कल आदमी का बच्चा बनायेंगे। देखो, इसमें आश्चर्य की क्या बात है? उसमें चोर, बदमाश ज्यादा हो जायेंगे, फिर ईश्वर के नियम को तोड़ देंगे। ये सब पाश्चात्य विज्ञान के कारण हो रहा है। वैज्ञानिक जिन्स के ऊपर काम करते हैं। संभव है, वे ऐसा आदमी बना लेंगे। पर आप लोग पुराण पढ़ेंगे, तो देखेंगे कि ये पुराण संकल्प-सृष्टि पर विश्वास करते हैं। विश्वामित्र ने संकल्प किया कि मैं स्वर्ग बानाऊँ, तो उन्होंने बनाकर दिखा दिया। हमारे कितने ऋषि-मुनियों ने संकल्प के द्वारा कितना कुछ बना लिया था। इसी बात को यह प्रमाण करता है कि मनुष्य के भीतर जो आत्मा है, वह सर्व-शक्तिमान है और वह सब कुछ कर सकता है। वेदान्त यही बात कहता है। क्योंकि सारा ज्ञान आत्मा में छिपा हुआ है। अगर आत्मा उसे बता देगी कि कैसे देह उत्पन्न करना है, तो देह बन जायेगी। यह देह पंच महाभूतों से बनी है, इसे जानकर बहुत आराम से वह देह बनायेगा। फिर उसको किसी माँ-बाप की आवश्यकता नहीं रहेगी। संकल्प किया तो उस प्रकार की शक्तियाँ मिल सकती हैं, पर इन सबको हम व्यर्थ समझते हैं। क्योंकि जिसका निर्माण किया गया है, उसका तो विनाश होगा ही। अगर हममें ऐसी शक्ति आ जाये कि हम अपने जैसे दस लाख लोग बना दें, तो वे लोग बन तो जायेंगे, किन्तु कभी-न-कभी वे मरेंगे। इसलिए हम उन सबको व्यर्थ समझते हैं। एक ही चीज है, जो वैज्ञानिक नहीं बना सकते। वह है हमारी आत्मा, चैतन्य शक्ति। क्योंकि वह अनिर्मित uncreated है। वैज्ञानिक जो बनायेंगे वह अनात्मा होगी, आत्मा नहीं होगी। जो सतत विद्यमान है, वह स्वयंभू है और उसी के कारण यह सम्पूर्ण संसार अवस्थित है। जो कुछ यहाँ बनता है, वह इस आत्मा के कारण ही बनता है और जो कुछ बिगड़ता है, वह इस आत्मा के कारण ही बिगड़ता है। बनने और बिगड़ने का आधार यह आत्मा ही है। इसलिए अपने आप को जानो, जिसे किसी ने नहीं बनाया है।

❖ (क्रमशः) ❖

# वैंकुवर से शिकागो-बॉस्टन

*स्वामी विदेहात्मानन्द*

(१८९१ ई. में स्वामी विवेकानन्द ने उत्तरी-पश्चिमी भारत का भ्रमण करते हुए राजस्थान में भी काफी काल बिताया था। तब वे वहाँ के अनेक लोगों – विशेषकर खेतड़ी-नरेश अजीत सिंह के घनिष्ठ सम्पर्क में आये। तदुपरान्त वे कन्याकुमारी तथा मद्रास होकर पुन: खेतड़ी आये। मुंशी जगमोहन लाल ने उनके साथ मुम्बई जाकर उन्हें अमेरिका के लिये विदा किया। यात्रा के दौरान उन्होंने राजा को कई पत्र लिखे। उनके पूरे जीवन व कार्य में राजपुताना तथा खेतड़ी-नरेश का क्या स्थान रहा – क्रमश: इन सभी विषयों पर सविस्तार चर्चा होगी। – सं.)

## वैंकुवर (कनाडा) में अवतरण

स्वामीजी ने पेनिन्सुलर नामक जहाज से मुम्बई से जापान की यात्रा की थी और याकोहामा केनैडियन पेसिफिक लाइन्स के 'एम्प्रेस ऑफ इंडिया' जहाज में १४ जुलाई को सवार हो कर २५ जुलाई की शाम को वे कनाडा के वैंकुवर में उतरे।

### जलयान का विवरण

'एम्प्रेस ऑफ इंडिया' जहाज में स्वामीजी ने जापान से अमेरिका की यात्रा की थी, परवर्ती काल में उसका वर्णन करते हुए उन्होंने अपने 'परिव्राजक' ग्रन्थ में लिखा था – "जिस जहाज के द्वारा जापान से पैसिफिक पार किया गया था, वह भी बहुत बड़ा था। बहुत बड़े-बड़े जहाजों में रहती है, पहली श्रेणी, दोनों ओर कुछ खाली जगह, उसके बाद दूसरी श्रेणी, और 'स्टीयरेज' इधर-उधर। एक हद में खलासियों और नौकरों के रहने की जगह होती है। 'स्टीयरेज' मानो तीसरी श्रेणी है; उसमें वही लोग जाते हैं जो बहुत गरीब हैं – जो अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि देशों में उपनिवेश स्थापित करने जा रहे हैं। उनके रहने की जगह बहुत थोड़ी होती है और उन्हें खाना भी हाथ पर ही दिया जाता है। वे सब जहाज जो हिन्दुस्तान और विलायत के बीच आते-जाते हैं, उनमें 'स्टीयरेज' नहीं है, परन्तु डेक-यात्री हैं। पहले और दूसरे दर्जे के बीच खुली जगह है, वहीं वे लोग बैठते और सोते हैं। लेकिन दूर की यात्रा करनेवाला ऐसा एक भी यात्री मुझे नहीं मिला। सिर्फ १८९२ ई. में चीन जाते समय मुम्बई से कुछ चीनी लोग लगातार हांगकांग तक डेक पर गये थे।"[१]

'एम्प्रेस आप इंडिया' जहाज में जापान से कनाडा गये

६००० टन के उक्त विशाल जलयान में कुल कितने लोगों ने स्वामीजी के साथ यात्रा की थी, इस विषय में स्वामी चेतनानन्दजी ने १९७३ ई. में वैंकुवर जाकर खोज की और वहाँ के जनरल लाइब्रेरी के समाचार-पत्र संग्रहालय से माइक्रोफिल्म विभाग से उन्हें उस दिन के समाचार की फोटो-प्रतिलिपि प्राप्त हुई। वैंकुवर के 'डेली न्यूज एडवरटाइजर' नामक संवादपत्र ने बुधवार, २६ जुलाई १८९३ के अंक में जहाज के पहुँचने का समाचार तथा यात्रियों की तालिका प्रकाशित की थी। समाचार निम्नलिखित है –

### एम्प्रेस ऑफ इंडिया

"यात्रियों तथा माल से भरी हुई सी.पी.आर स्टीमर 'एम्प्रेस ऑफ इंडिया', जिसके कप्तान मार्शल थे, पिछली शाम ७ बजे पहुँची। यात्रा बिना किसी घटना के शान्तिपूर्ण हुई थी। मौसम अच्छा था और यात्रा निर्धारित समय पर पूरी हुई। पिछले शनिवार को जहाज पर ही एक नृत्य का आयोजन हुआ था, जिसमें बड़ा आनन्दपूर्ण समय बीता। ... उसके स्टीयरेज में २६७ चीनी तथा ९८ जापानी यात्री आये। उसके सैलून यात्रियों की तालिका इस प्रकार है – ... श्री सी. लल्लू भाई, ... श्री टाटा तथा उनके सेवक, ... श्री एस. विवेकानन्द।"[२] तालिका के अनुसार उस जहाज के यात्रियों

१. विवेकानन्द साहित्य, १९६३, खण्ड ८, पृ. १६३
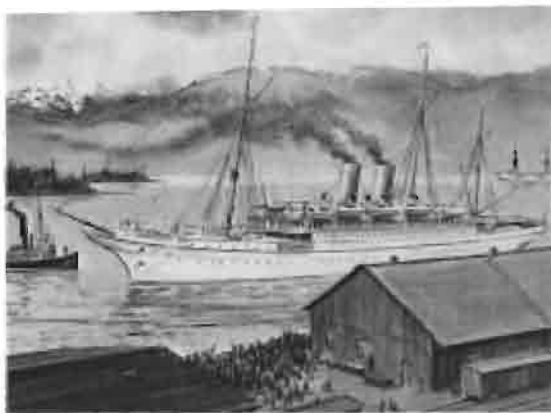
२. उद्बोधन मासिक (बँगला), सितम्बर १९७३, पृ. ५२९-३० (स्वामी चेतनानन्द लिखित लेख – विवेकानन्द : बाम्बे थेके वैंकुवर) एवं Swami Vivekananda : A Hundred Years Since Chicago, Ramakrishna Math & Mission, Belur Math, Ed. 1994, (Vivekananda on the way to Chicago, Swami Chetnananda, Pp. 8-19)

की कुल संख्या थी करीब ५००, जिसमें ११० सैलून अर्थात् उच्च श्रेणी के और बाकी स्टीयरेज अर्थात् निम्न श्रेणी के यात्री थे, जिनमें २६७ जापानी तथा ९८ चीनी थे। जहाज के कप्तान, अफसर तथा डॉक्टरों आदि की संख्या ११ थी।

वैंकुवर में स्वामीजी के परिचित सेठ छबीलदास लल्लूभाई तथा जमशेदजी टाटा उनके साथ ही जलयान से उतरे थे। और सम्भवत: एक साथ ही शिकागो तक ट्रेनयात्रा की थी।

## विनिपेग में विश्राम

वैंकुवर से शिकागो पहुँचने के लिये पूर्व की ओर कनाडा पैसिफिक रेलवे से १६०० मील की यात्रा करनी पड़ती थी। इस यात्रा में तीन दिन लगते थे। वैंकुवर से प्रतिदिन पूर्वाह्न में १०.४५ बजे ट्रेन छूटती थी। नवीनतम शोध के अनुसार स्वामीजी ने २७ जुलाई का पूरा दिन वैंकुवर में ही बिताया और २८ जुलाई की ट्रेन में सवार होकर ६० घण्टों की यात्रा करने के बाद ३० जुलाई की रात के ११.३० बजे विनिपेग पहुँचे। 'विनिपेग फ्री प्रेस' के ३१ जुलाई के अंक (पृ. ८) में प्रकाशित समाचार से ऐसा ज्ञात होता है। उसमें लिखा है – "एक हिन्दू धर्माचार्य स्वामी विवेकानन्द पश्चिम की ओर से शिकागो जाते हुए पिछली रात यहाँ पहुँचे। वहाँ वे भारतीय प्रतिनिधि के रूप में विश्व-धर्म-महासभा में भाग लेंगे।"[३] उसी अखबार के एक अन्य समाचार के अनुसार वह अटलांटिक एक्सप्रेस पिछली रात एक घण्टे देर से पहुँची थी।

विनिपेग में रात उन्होंने कहाँ बितायी? बहुत-से यात्री वहाँ के लोकप्रिय होटल 'मनिटोबा' में ठहरे थे। पूर्वोक्त समाचार-पत्र लिखता है – "मुम्बई के पाँच व्यापारी पश्चिम की ओर से शिकागो जाने के मार्ग में यहाँ पहुँचे और मैनर में ठहरे हैं। ये लोग विश्व-प्रदर्शनी में दो माह बितायेंगे।" इन पाँच यात्रियों में सम्भवत: छबीलदास लल्लूभाई, जमशेदजी टाटा, उनके सेवक तथा स्वामीजी भी थे। या फिर हो सकता है कि वे अगले दिन दोपहर में जानेवाली उस ट्रेन में ही रह गये हों।

विनिपेग से शिकागो जानेवाले यात्रियों को लेकर रेलगाड़ियाँ दक्षिण की ओर स्थित मिनियापोलिस होते हुए ३३ घण्टों में बाकी ९०० मील की यात्रा करती थीं। ये गाड़ियाँ दोपहर में छूटकर सुबह तक मिनियापोलिस पहुँचतीं और रात के साढ़े नौ बजे शिकागो पहुँच जातीं। सम्भवत: ३० जुलाई, रविवार की रात विनिपेग में बिताने के बाद अगले दिन दोपहर को उन्होंने ट्रेन से आगे की यात्रा की और १ अगस्त, मंगलवार की शाम को शिकागो पहुँचे।[४]

## सहयात्रिणी कैथरिन सैनबॉर्न

वैंकुअर से शिकागो जाते समय स्वामीजी जिस रेलगाड़ी से यात्रा कर रहे थे, उसी में एक महिला पत्रकार – कैथरिन या केटे सैनबॉर्न भी उनकी सहयात्रिणी थी।[५] उन्होंने अपने संस्मरणों में लिखा है – "पिछली गर्मियों में कैनेडियन पैसिफिक रेलगाड़ी के आबजर्वेशन कार[६] में मेरी उनसे भेंट हुई थी। शिकागो के लिये मेरी उस यात्रा के दौरान पहाड़ों, खाइयों, हिमनदों और महाद्वीप के बीच स्थित उच्च पर्वतमाला भी, विदेशी पर्यटकों की ओर से मेरी दृष्टि को पूर्णत: आकृष्ट नहीं कर सकी थी, जिनमें थे – भारत के पारसी, कैंटन के करोड़पति व्यापारी, न्यूजीलैंड-वासी, पुर्तगाली तथा स्पैनिश व्यापारियों के साथ विवाहित फिलीपीन द्वीपों की सुन्दर महिलाएँ, अपनी सुसंस्कृत पत्नियों तथा सुशिक्षित पुत्रों के साथ उच्च कुल के जापानी अधिकारी, आदि आदि।

"मैंने सभी के साथ बातें कीं। उन लोगों ने सप्रेम मुझे अपने देश आने का निमंत्रण दिया और मैंने भी नि:संकोच भाव से, बड़े उत्साहपूर्वक सबको अपने ग्रामीण आवास के बारे में बताया और प्रत्येक को अपना कार्ड दिया, जिस पर 'मेटकॉफ, मेसाचुसेट्स' का मेरा स्थायी पता मुद्रित था।

"मैंने बॉस्टन तथा उसके आसपास के महत्त्वपूर्ण पुरुषों तथा नारियों का उल्लेख किया, जो प्राय: ही मेरे अतिथि हुआ करते थे और सबको आश्वस्त किया कि मेरे कृषिफार्म में उन सबका हार्दिक स्वागत होगा।

"परन्तु मैं सर्वाधिक प्रभावित हुई थी उन संन्यासी से, जो लम्बे और पौरुष के एक भव्य उदाहरण थे, जो सात्विनी के समान सुन्दर, जिनकी चाल ऐसी प्रभावी तथा राजकीय थी मानो वे पूरे ब्रह्माण्ड के सम्राट् हों, और मृदु काली आँखें, जो उत्तेजित किये जाने पर आग उगलती थीं और कोई मजेदार प्रसंग होने पर आनन्द से नृत्य करने लगती थीं।

"उन्होंने कई मीटर लम्बा एक चटक पीले रंग की पगड़ी लगा रखा था; शरीर पर अपने जीवन-दर्शन का प्रतीक गेरुए वस्त्र धारण कर रखे थे, जो गुलाबी रंग के एक चौड़े तथा भारी कमरबन्द से बँधा हुआ था; कत्थई रंग की धोती और भूरे रंग के जूते – कुल मिलाकर यही उनकी वेशभूषा थी।

"वे मुझसे कहीं अच्छी अंग्रेजी बोलते थे; प्राचीन तथा आधुनिक साहित्य से सुपरिचित थे; शेक्सपियर, लाँगफेलो, टेनिसन, डार्विन, मूलर या टिंडल के ग्रन्थों से अनायास तथा सहज भाव से उद्धरण देते थे; बाइबिल के पृष्ठ-दर-

३. Prabudha Bharata, August 2006, p. 47-48 ४. वही

५. स्वामीजी की पुरानी जीवनियों में लिखा था कि धर्ममहासभा के पहले शिकागो से बॉस्टन की ओर जाते समय ट्रेन में कैथरीन सैनबार्न से उनकी भेंट हुई थी, परन्तु परवर्ती शोधों से प्राप्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि वैंकुवर (कनाडा) में जलयान से उतरकर वहाँ से शिकागो जाने के मार्ग में ही उनकी कैथरीन से भेंट हुई थी।

६. अमेरिका के ट्रेनों की अन्तिम बोगी के रूप में लगनेवाला डिब्बा, जिसमें बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ होती हैं और उसमें बैठकर यात्री मार्ग की दृश्यावली का अवलोकन कर सकता है। (द्र. वेब्स्टर शब्दकोश)

पृष्ठ सुना सकते थे; और सभी सम्प्रदायों के प्रति सद्भाव तथा उनका ज्ञान रखते थे। उनका सान्निध्य अपने आप में एक शिक्षा, एक अनुभूति और एक दिव्य अभिव्यक्ति थी।

"उनसे विदा लेते समय मैंने कहा कि यदि वे संयोगवश बॉस्टन आयें, तो मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ वहाँ के विद्वान् तथा सुसंस्कृत नर-नारियों से उनकी मुलाकात कराऊँगी।"[७]

## शिकागो में मेला-परिदर्शन (२-१२ अगस्त)

अमेरिका पहुँचने के बाद स्वामीजी द्वारा भारत भेजा गया जो सर्वप्रथम हस्तलेख प्राप्त होता है, वह है – शिकागो से खेतड़ी-राजा के नाम एक सचित्र पोस्ट-कार्ड। इसमें स्वामीजी ने केवल इतना ही लिखा है – "स्वामी विवेकानन्द के आशीर्वाद तथा शुभ कामनाओं सहित।" इस पर शिकागो के डाकघर की १२ अगस्त की और खेतड़ी डाकघर की १४ सितम्बर की मुहर लगी है। इससे अनुमान होता है कि अमेरिका से भारत डाक आने में करीब माह भर लगता था।[८]

अमेरिका से स्वामीजी द्वारा भेजा गया प्रथम हस्तलेख

वैंकुवर तथा शिकागो आदि स्थानों से स्वामीजी ने खेतड़ी के राजा को कई पत्र लिखे होंगे, परन्तु चूँकि वे खो चुके हैं, अत: हम केवल अनुमान ही लगा सकते हैं कि उन्होंने क्या लिखा होगा। उस काल का स्वामीजी द्वारा श्री आलासिंगा पेरूमल के नाम लिखा हुआ एकमात्र पत्र ही अब उपलब्ध है। इस पत्र में उसमें उन्होंने शिकागो मेले में क्या देखा इसकी थोड़ी-सी जानकारी दी थी। वे लिखते हैं –

"कल तुम्हारा पत्र मिला। शायद तुम्हें इस बीच मेरा जापान से लिखा हुआ पत्र मिला होगा। जापान से मैं वैंकुवर पहुँचा। मुझे प्रशान्त महासागर के उत्तरी हिस्से में होकर जाना पड़ा। ठण्ड बहुत थी। गरम कपड़ों के अभाव से बड़ी तकलीफ हुई। अस्तु, किसी तरह वैंकुवर पहुँचकर वहाँ से कनाडा होकर शिकागो पहुँचा। वहाँ लगभग बारह दिन रहा। वहाँ प्राय: हर रोज मेला देखने जाता था। वह तो एक विराट् व्यापार है! कम-से-कम दस दिन घूमे बिना पूरे मेले की सैर करना असम्भव था। वरदा राव ने जिन महिला से मेरा परिचय करा दिया था, वे और उनके पति शिकागो समाज के बड़े गण्यमान्य व्यक्ति हैं। उन्होंने मुझसे बहुत अच्छा बर्ताव किया। पर यहाँ के लोग जो विदेशियों का सत्कार करते है, वह केवल औरों को तमाशा दिखाने के ही लिए है; आर्थिक सहायता से प्राय: सभी मुँह मोड़ लेते हैं। इस साल यहाँ भारी अकाल पड़ा है – व्यापार में सबको नुकसान हो रहा है, इसलिए मैं शिकागो अधिक दिन नहीं ठहरा। शिकागो से मैं बोस्टन आया। लल्लूभाई[९] वहाँ तक मेरे साथ थे। उन्होंने भी मुझसे बड़ा अच्छा बर्ताव किया।"[१०]...

उपरोक्त पत्रांश से ज्ञात होता है कि शिकागो में स्वामीजी चेन्नै के अपने अनुरागी भक्त वरदा राव के एक मित्र – श्री अर्सकिन मेसन फेल्प्स से भी मिलने गये थे। उसी काल के एक पत्र में कुमारी ग्रेस होवे ने सूचित किया है – "सम्भवत: वे अर्सकिन फेल्प्स के नाम एक पत्र लेकर आये थे और यहाँ (अमेरिका) पहुँचकर उन्होंने वह उन्हें भेज दिया था। वे लोग तत्काल उनसे मिलने आये और उन्हें अपने आवास पर ले गये। कुछ दिनों पूर्व उन्होंने (स्वामीजी) उनके बारे में बताया, 'वे लोग बड़े कृपालु मित्रवत् लोग हैं – मेरे प्रति बड़े उदार रहे, परन्तु मैं वहाँ रह नहीं सका।' जब हमने पूछा, 'क्यों?' तो वे उलझन के साथ बोले, 'नहीं जानता क्यों – शायद इसलिये कि वे फैशनेबल लोग हैं। वे मुझे क्लब में ले गये, जलपोत पर सैर करायी, हर समय मद्यपान करते रहे – मैंने जब कहा – मैं नहीं पीता, तो भी उन लोगों ने बिना सुने मेरे लिये भी मँगा दिया। वे लोग बात-बात में भगवान की कसम खाते थे। मैंने वहाँ कोई अमेरिकन नहीं देखा। मेरी समझ में कुछ नहीं आया, परन्तु मैं उन लोगों की तरह नहीं रह सकता था, इसलिये मुझे चले जाना पड़ा।"[११]

७. Reminisceces of Swami Vivekananda, Ed.2004, p. 414-18

८. उद्बोधन, वर्ष ८६, अंक ९, पृ. ५५० (डॉ. अरुण कुमार विश्वास द्वारा पं. झाबरमल शर्मा के कागजातों में प्राप्त।)

९. सेठ छबीलदास लल्लूभाई भंसाली

१०. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड १, पृ. ४०० (२० अगस्त, १८९३)

११. Swami Vivekananda in Chicago : New Findings, Asim Chaudhuri, Advaita Ashrama, Ed. 2000, P. 149-150

पूर्वोद्धृत पत्र में ही स्वामीजी ने आगे लिखा है – "अभी हाल ही में शिकागो में एक बड़ा तमाशा हो चुका है। कपूरथला के राजा[१२] यहाँ पधारे थे और शिकागो समाज के कुछ लोग उन्हें आसमान पर चढ़ा रहे थे। मेले के परिसर में मेरी राजा के साथ भेंट हुई थी, पर वे अमीर आदमी ठहरे – मुझ फकीर के साथ बातचीत क्यों करते? उधर एक पागल-सा, धोती पहने हुए महाराष्ट्रीय ब्राह्मण, मेले में कागज पर अपने नाखूनों से चित्र बनाकर बेच रहा था। उसने अखबारों के संवाददाताओं से उस राजा के विरुद्ध बहुत-सी बातें कह दी थीं। उसने कहा था कि यह आदमी बड़ी नीच जाति का है और ये राजा गुलाम जैसे स्वभाववाले और दुराचारी होते हैं, आदि आदि। और यहाँ के सत्यवादी (!) सम्पादकों ने – जिनके लिए अमेरिका मशहूर है – इस आदमी की बातों को कुछ गुरुत्व देने के लिए अगले दिन के अखबारों में बड़े-बड़े स्तम्भ निकाल दिये, जिसमें उन्होंने भारत से आये हुए एक ज्ञानी पुरुष का – उनका तात्पर्य मुझसे था – वर्णन किया और मेरी प्रशंसा के पुल बाँधकर मेरे मुँह से ऐसी ऐसी बातें निकालवा डालीं, जिनको मैंने स्वप्न में भी कभी नहीं सोचा था; अन्त में उन्होंने, उस महाराष्ट्र-ब्राह्मण ने इस राजा के बारे में जो कुछ कहा था, सब मेरे ही मुख से निकला हुआ बता दिया। इसी से शिकागो समाज ने तुरन्त राजा को त्याग दिया। इन सत्यवादी सम्पादकों ने मेरे द्वारा मेरे एक स्वदेशी को अच्छा धक्का पहुँचाया, इससे यह भी प्रकट होता है कि इस देश में धन या उपाधियों की चमक-दमक की अपेक्षा बुद्धि की कदर अधिक है।"[१३]

स्वामीजी शिकागो पहुँचकर लगता है कि पहले तो सेठ छबीलदास के साथ ही होटल में ठहरे थे, और बाद में अर्सकिन फेल्प्स के आवास पर गये, परन्तु वहाँ का वातावरण उन्हें अपने आध्यात्मिक जीवन के उपयुक्त नहीं प्रतीत हुआ, अत: वे वापस अपने होटल लौट आये।

## सेठ छबीलदास के संस्मरण

छबीलदास ने स्वामीजी के साथ मुम्बई से बैंकुवर, शिकागो तथा बॉस्टन तक की यात्रा की थी और न्यूयार्क, लन्दन होते हुए वे पहले ही भारत लौट आये थे। स्वामीजी के एक शिष्य अक्षय कुमार घोष स्वामीजी के बारे में सूचना पाने के लिये मुम्बई में उनके आवास पर जाकर उनसे मिले और जो कुछ सुना उसे खेतड़ी-नरेश अजीतसिंह को सूचित करने हेतु उनके निजी सचिव मुंशी जगमोहन लाल को एक पत्र लिखा। स्मरणीय है कि स्वामीजी के शिकागो-व्याख्यान में भाग लेने तथा उनकी प्रसिद्धि की सूचना अभी तक भारत में नहीं पहुँची थी। श्री घोष का वह पत्र इस प्रकार था –

मुम्बई,

६-१०-१८९३

प्रिय जगमोहन लाल जी

अपने पिछले पत्र के विषय को जारी रखते हुए, स्वामीजी के विषय में विभिन्न समाचारों से आपको अवगत कराते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। सुबह मैं उनके बारे में सविस्तार समाचार लेने हेतु श्री छबीलदास के यहाँ गया था और अभी-अभी लौटा हूँ। अमेरिका में स्वामीजी से विदा लेने के पूर्व तक वे सर्वदा उनके साथ-साथ थे। जापान में उन्होंने लगभग एक माह (सप्ताह) बिताया और पूर्व के इस इंग्लैंड (अर्थात् जापान) के भीतरी अंचलों तक गये और स्वामीजी वहाँ के रीति-रिवाजों का निरीक्षण करते रहे, मन्दिरों का दर्शन करते रहे और रुचि, प्रसिद्धि तथा पुरातत्त्व से सम्बन्धित मार्ग में जो कुछ मिला उसका अवलोकन करते रहे। चूँकि जापान में अंग्रेजी भाषा काफी लोग जानते तथा बोलते हैं, स्वामीजी को वहाँ अपने भाव व्यक्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई; परन्तु चीन में वे श्री छबीलदास के साथ एक पखवारा (करीब एक सप्ताह) रहे और वहाँ चीनी लोगों को अपनी बातें समझाने में उन्हें बड़ी कठिनाई का अनुभव हुआ, जिनके बीच वे न केवल एक आगन्तुक, अपितु एक तीक्ष्ण पर्यवेक्षक, धार्मिक जिज्ञासु, पुरातत्त्व-वेत्ता, सत्यप्रेमी और जो कुछ भी अच्छा मिले उसके संग्राहक के रूप में गये थे। वहाँ उन्हें एक दुभाषिया लेना पड़ा, जिसे अंग्रेजी के साथ-ही-साथ चीनी भाषा भी आती थी, परन्तु उसे अंग्रेजी का इतना अच्छा ज्ञान न था कि वह स्वामीजी के दार्शनिक, धार्मिक तथा पुरातात्त्विक जिज्ञासाओं को उनसे मिलनेवाले चीनी विद्वानों को समझा पाता। वैसे तटीय नगरों में अंग्रेजी जाननेवाले बहुत-से लोग हैं, परन्तु स्वामीजी जैसी महान् निरीक्षण-शक्ति से युक्त व्यक्ति उन लोगों के माध्यम से उस देश के धार्मिक विचारों तथा संरचना की जानकारी प्राप्त करना और उससे भी अधिक एक न्यायसंगत धारणा बनाना पसन्द नहीं करेगा।

१२. कपूरथला के राजा का नाम था – श्री जगजीत सिंह अहलूवालिया। उनके और अपने नाखून से चित्रकारी करनेवाले महाराष्ट्रीय ब्राह्मण के बारे में अमेरिकी अखबारों में छपे कुछ समाचारों के लिये देखिये – Swami Vivekananda in Chicago : New Findings, P. 59-62

१३. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड १, पृ. ४००
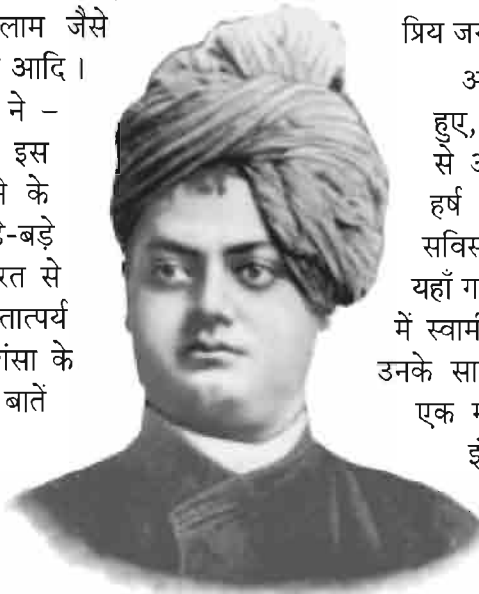
"शिकागो में अमेरिकी लोगों ने एक संन्यासी के रूप में उन्हें बड़ा सम्मानित किया और रेलिजस कांग्रेस[१४] की ओर से प्राच्य एवं पाश्चात्य के तुलनात्मक धर्मों पर एक निबन्ध पढ़ने को कहा, पर वे राजी नहीं हुए। लोग उनकी तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि, मेधा, स्पष्ट समझ तथा विद्वत्ता से बड़े प्रभावित थे। उन्होंने शिकागो की धर्मसभा की प्राय: सभी सभाओं में भाग लिया। फिलाडेल्फिया तथा वाशिंग्टन की कुछ सभाओं में उन्हें सम्मानपूर्वक स्वागत किया गया और साहित्य, कला विज्ञान तथा धर्म के क्षेत्र के कुछ बड़े गण्यमान्य व्यक्तियों द्वारा बड़े उदार आतिथ्य के साथ स्वीकार किया गया।

"वाशिंग्टन की एक ऐसी ही सभा में उन्होंने वेदान्त-दर्शन की व्याख्या की और श्रोताओं का, जिसमें से कई अमेरिकी संसद या और भी ठीक ढंग से कहें तो कांग्रेस के महत्त्वपूर्ण सदस्य थे। उनका मत था कि उनकी (स्वामीजी) वक्तृत्व क्षमता किसी भी राष्ट्र को, किसी भी देश के लिये गौरव हासिल करेगी। ... ... पूरी यात्रा के दौरान स्वामीजी का स्वास्थ्य ठीक था, बीच में उन्हें थोड़ा-सा सी-सिकनेस (समुद्री रोग) और वाशिंग्टन में 'सल्फ्यूरिक स्नान' के बाद हल्का सा बुखार आया था। श्री छबीलदास से मुझे इतनी ही जानकारियाँ मिल सकीं। (उनके पुत्र) श्री रामदास ने मुझे एक अमेरिकी पत्रिका दिखाई, जिसमें छपा था कि स्वामीजी पुन: शिकागो आयेंगे और बौद्ध-धर्म का प्रतिनिधित्व करेंगे और जैसा कि हम सभी जानते हैं कि इस विषय के वे अधिकारी विद्वान् हैं। गुरुजी ने चीन और जापान से श्री रामदास को कुछ पत्र भेजे हैं, पर उसके बाद नहीं भेजे। उन्होंने मुझे आपसे यह अनुरोध करने को कहा है कि यदि आप उन्हें कुछ सूचित करने योग्य समझते हों, तो अवश्य करें। ...

महाराज तथा आपको सच्चे प्रेम तथा भक्तिपूर्ण प्रणाम के साथ –

आपका अत्यन्त विश्वस्त
अक्षय कुमार घोष
द्वारा जे. बी. मेहता एस्क्वायर बी. ए.
चर्नी रोड, गिरगाम, मुम्बई"[१५]

शिकागो में १२ दिन मेला देखने के बाद स्वामीजी सम्भवत: आसपास के कुछ अन्य स्थानों का भ्रमण करने के बाद सेठ छबीलदास लल्लूभाई के साथ बॉस्टन गये। उपरोक्त पत्र में इस विषय में भी कुछ जानकारी मिलती है, परन्तु चूँकि यह पत्र सुनकर लिखा गया है, इसमें कुछ भूलें भी हो सकती हैं, अत: उन्हें अन्य स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं से सत्यापन करके ही ग्रहण करना होगा। ❖ **(क्रमश:)** ❖

१४. कोई अन्य सभा, न कि विख्यात धर्म-महासभा
१५. खेतड़ी पेपर्स १९९९

## सरस्वती-वन्दना

*रामनिहोर तिवारी*

**हंस-वाहिनी मैया**
**जग को, ज्योतिर्मय कर दे।**
**ज्ञानदीप की आभा से**
**सबको निर्मल कर दे।।**

**मानवता मानव में पुष्पित हो,**
**सुगन्ध बिखराये,**
**भ्रातृभाव की निर्मल सरिता,**
**घर-घर में लहराये;**
**वसुधा बने कुटुम्ब हमारी,**
**ऐसी मति कर दे।**
**हंस-वाहिनी मैया जग को,**
**ज्योतिर्मय कर दे।**

**प्रजातन्त्र की बेल पल्लवित**
**हो, निश-दिन मुसकाये,**
**पुष्पित रहे देश की बगिया,**
**पतझर कभी न आये;**
**अन्तर्मन की कटुता हर कर,**
**मधुमय रस भर दे।**
**हंस-वाहिनी मैया जग को,**
**ज्योतिर्मय कर दे।।**

**फलासक्ति मिट जाय धरा से,**
**कर्मक्षेत्र हम पूजें,**
**गीता के उपदेश हमारे,**
**जन-मानस में गूँजें;**
**युग निर्माता बने लेखनी,**
**हम को यह वर दे।**
**हंस-वाहिनी मैया जग को,**
**ज्योतिर्मय कर दे।।**
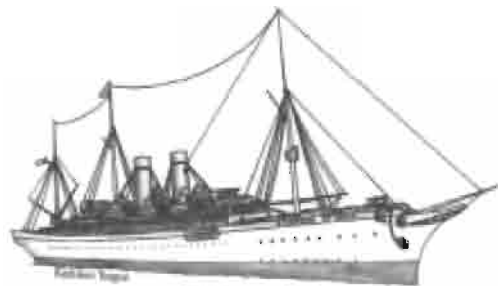
The Empress of India

# दीपावली का अर्थ

*स्वामी आत्मानन्द*

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विभिन्न विषयों पर अनेक विचारोत्तेजनक लेख लिखे थे, जो आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय समय पर प्रसारित किये जाते रहे हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी, रायपुर से साभार गृहीत हुआ है। - सं.)

हमारा देश पर्वों और त्यौहारों का देश है। हर पर्व और त्यौहार एक नयी उमंग लेकर आता है और हमारे जीवन को खुशियों से भरने की चेष्टा करता है। जब इन त्यौहारों की शुरुआत हुई, तब हमारा देश गरीबी के अभिशाप से ग्रस्त नहीं था। वे देश के लिए सुख-स्वच्छन्दता और अमन-चैन के दिन थे। मनुष्य के जीवन में उतना तनाव नहीं था, आपाधापी नहीं थी, गर्दन पर वार करनेवाली कटु प्रतियोगिताएँ नहीं थीं। तब प्रकृति का दोहन नहीं, उसकी पूजा की जाती थी और प्रकृति भी अपना सन्तुलन बनाये रखकर मनुष्य के जीवन को प्राकृतिक विपदाओं के शापों से यथाशक्ति मुक्त रखती थी। पर आज पासे ही उलट गये हैं और त्यौहार खर्च के पर्याय बन गये हैं। उनका जीवन पक्ष धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है और अनुष्ठानों में यांत्रिकता का बढ़ता हुआ बोझ उमंग को मानो दबा-सा दे रहा है।

तथापि आज की बदलती हुई परिस्थितियों में भी, जिन त्यौहारों की हम बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं, उनमें दीपावली शीर्ष स्थान रखती है। यह भारत का सबसे बड़ा त्यौहार है, जिसे सभी धर्म तथा सम्प्रदायों के लोग मनाते हैं। इस पर्व पर छोटी-से-छोटी झोपड़ी से लेकर बड़े-बड़े महल तक दियों के प्रकाश में जगमगा उठते हैं। आजकल भले ही लोग बिजली के लट्टुओं से सुन्दर सजावट करें, पर वे भी दीप जलाना नहीं भूलते। जहाँ देखें, वहाँ दीपों की कतार दिखाई पड़ती है। 'दीपावली' का अर्थ भी दीपों की कतार ही है।

यह त्यौहार कैसे शुरू हुआ, इसके सम्बन्ध में विविध मान्यताएँ हैं। मुख्य मान्यता तो यह है कि आज के ही दिन अयोध्या की प्रजा ने चौदह वर्षों के वनवास से लौटकर आये हुए श्रीराम के राज्यारोहण का महोत्सव मनाया था। जो अयोध्या चौदह वर्षों तक सूनी-सूनी और अँधेरे में डूबी हुई उदास पड़ी थी, वह श्रीराम के आगमन से आज ही के दिन प्रकाश से जगमगा उठी थी। तभी से इस पर्व पर हर वर्ष दीपमालिका जलाकर हर्ष प्रकट किया जाता है।

दूसरा कारण यह है कि इस शरद् ऋतु के आगमन के साथ वर्षा से धुली हुई धरती समेत निसर्ग चमक उठता है। वर्षा के अन्त की सूचना देनेवाले इस पर्व में वर्षा से उत्पन्न गन्दगी को दूर करके, घरों को लीप-पोतकर साफ करके दीपमालिका के स्निग्ध प्रकाश से आलोकित किया जाता है।

इसका तीसरा कारण है – नयी फसल का आगमन। कार्तिक के महीने में खेतों से पका हुआ अनाज खलिहानों में पहुँचकर समृद्धि के आगमन की सूचना देता है। अतएव समृद्धि की देवी लक्ष्मी की अगवानी के रूप में दीप-मालिकाएँ सजायी जाती हैं। चौथी मान्यता के अनुसार आज ही के दिन समुद्र-मन्थन से लक्ष्मीजी का प्रादुर्भाव हुआ था। अतएव इसे लक्ष्मीजी के स्वागत-पर्व के रूप में भी मनाया जाता है।

पाँचवी मान्यता यह है कि कार्तिक मास के धनतेरस से अमावस्या तक के तीन दिनों में ही वामन रूपधारी भगवान विष्णु ने दैत्यराज बलि से सम्पूर्ण लोक ले लेने के पश्चात् उसे पाताल लोक जाने को विवश करते हुए एक वरदान माँग लेने की आज्ञा दी थी। इस पर पुण्यात्मा बलि ने कहा था – "आपने कार्तिक मास के त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावस्या के जिन तीन दिनों में मुझसे पृथ्वी लोक ग्रहण किया है, उनमें जो प्राणी मृत्यु के देवता यमराज के उद्देश्य से दीपदान करे, उसे यम की यातना न मिले और उसका घर कभी लक्ष्मी से विहीन न हो।" राजा बलि की यह प्रार्थना भगवान ने स्वीकार कर ली और तभी से ये तीन दिन यम के उद्देश्य से किये जानेवाले दीपदान रूप दीपावली का प्रचलन हुआ।

छठवीं मान्यता के अनुसार प्राग्ज्योतिषपुर के नरेश भूमिपुत्र भौम का, जो नरकासुर के नाम से भी जाना जाता था और जो बड़ा आततायी और दुष्ट था, भगवान कृष्ण ने बड़ी युक्ति से चतुर्दशी के दिन वधकर, उसके कारागार में बन्दिनी सहस्रों राजकुल की स्त्रियों तथा राजाओं की मुक्ति की थी। इसलिए यह तिथि नरक-चतुर्दशी के नाम से विख्यात हुई। उसके कारागार से मुक्त होने की खुशी में राजाओं और उनकी प्रजाओं ने दीपमालाएँ जलाकर खूब उत्सव किया था। तब से दीपावली का शुभारम्भ हुआ।

सारांश में, दीपावली अन्धकार, गन्दगी, बन्धन और अज्ञान से मुक्ति की सूचना देनेवाला पर्व है। यह जूआ आदि अशुभ, अवांछनीय कर्मों के द्वारा खुशी मनाने का नहीं, वरन् शुभ कर्मों द्वारा श्री और ऐश्वर्य की कृपा पाने का पर्व है। ❑
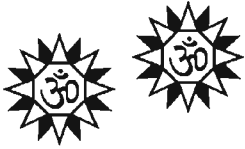
# पत्रों में स्वामीजी के संस्मरण (३)
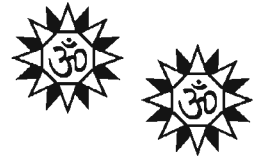
***भगिनी निवेदिता***

(धन्य थे वे लोग, जिन्होंने स्वामीजी के काल में जन्म लिया तथा उनका पुण्य सान्निध्य प्राप्त किया। उनके प्रत्यक्ष सम्पर्क में आनेवाले अनेक लोगों ने अपनी अविस्मरणीय स्मृतियाँ लिपिबद्ध की हैं, जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा ग्रन्थों में प्रकाशित हुई हैं। प्रस्तुत संस्मरण अद्वैत आश्रम द्वारा प्रकाशित 'Reminiscences of Swami Vivekananda' ग्रन्थ से गृहीत तथा अनुवादित हुआ है। – सं.)

१३. *शिकागो, १० दिसम्बर १८९९* : किसी ने मुझसे पूछा – "स्वामीजी इतने महान् हैं, तो भी ऐसा क्यों है कि आज वे कहते हैं, 'आध्यात्मिकता ही मेरे देश के लिये एकमात्र स्पृहणीय वस्तु है, उसके लिये भौतिक वस्तुएँ चाहकर मैंने भूल की' और अगले दिन वे भारत के लिये भौतिक उन्नति की परम आवश्यकता के ऊपर बल देते रहेंगे? आदि, आदि। और दोनों ही अवस्थाओं में उनके चेहरे के भाव समान रहते हैं!" मैंने बोलकर उन्हें थोड़ा-थोड़ा समझाया कि ये विरोधाभास मेरे लिये कितने उपयोगी सिद्ध हुए हैं। उन्होंने कितने नाटकीय ढंग से कर्मफलों के पूर्ण त्याग की महत्ता बतायी थी!... यह बात कितनी सच है कि स्वाधीनता के बिना शान्ति नहीं मिलती है! छोटी-मोटी बातों पर विचलित हो उठना कैसी मूर्खता है! मुझे पूरे वेदान्त की पूरी आवश्यकता है, क्योंकि यह सेवा तथा सहायता में पूरा जीवन न्यौछावर कर देने की इच्छाशक्ति जगाने में बड़ा सहायक है। अन्यथा एक ही शरीर में बद्ध होकर एक छोटे-से संकरे मार्ग मात्र चलते हुए एक ही प्रकार से कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। परन्तु हम सब एक हैं : क्या तुम्हारा और निवेदिता के रूप में मेरा मार्ग एक ही नहीं है? अहा, केवल यदि कोई इसका अनुभव कर पाता!

अन् आरबर
१३ जनवरी, १९००

मेरे प्रिय पिता,[१]

आपके द्वारा रचित जन्मदिन-कविता[२] पिछली रात मुझे प्राप्त हुई। उसके विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है और वह उचित भी नहीं प्रतीत होगा – केवल इतना ही कि यदि आपकी सुन्दर कामना सम्भव होती, तो मेरा हृदय उसे वहन नहीं कर पाता।

इस विषय में मैं रामप्रसाद के इन विचारों से सहमत हूँ – "मैं चीनी खाना चाहता हूँ, चीनी होना नहीं चाहता!" यहाँ तक कि मैं ईश्वर को किसी भी रूप में जानना नहीं चाहती; यहाँ तक कि ऐसी बातें सोचना भी मेरे लिये हास्यास्पद ही है और यह भी इससे मेरे पिता मुझसे असीम रूप हो जायेंगे!

मैं जानती हूँ कि अपने गुरु के बारे में ऐसा सोचने की जरूरत नहीं है कि ईश्वर का दर्शन होने पर गुरु विलुप्त हो जायेंगे, परन्तु ऐसे क्षण में भी इस आश्वासन के बिना मैं पूर्ण आनन्द की कल्पना नहीं कर सकती कि उनका आनन्द इससे भी महान् था।

मैं असम्भव बातें व्यक्त करने की तथा अचिंत्य विषय को सोचने की चेष्टा कर रही हूँ, परन्तु आप भलीभाँति जानते हैं कि मैं क्या कहना चाहती हूँ।

मैं सोचती थी कि मैं भारतीय नारियों के लिये कार्य करना चाहती हूँ – मेरे मन में हर तरह की भव्य कल्पनाएँ आया करती थी, पर क्रमश: मैं उन ऊँचाइयों से नीचे उतरती रही हूँ और आज मैं कोई कार्य केवल अपने पिता की इच्छा पूर्ति के लिये ही करना चाहती हूँ।

यहाँ तक कि ईश्वर का ज्ञान होना भी लाभ के रूप में वापस पाने जैसा प्रतीत होता है। इच्छा होती है कि केवल सेवा के लिये ही चिर काल तक सेवा करती रहूँ, प्रिय गुरुदेव – एक छोटे-से दु:खपूर्ण जीवन के लिये नहीं।

एक अन्य विषय में भी मैं निश्चिन्त हूँ, और सही क्षणों में निश्चिन्त रहना चाहती हूँ और वह यह कि आनेवाले निकट भविष्य में आपकी हजारों सन्तानें होंगी, जो मुझसे बड़ी तथा अधिक सुयोग्य होंगी और मेरी अपेक्षा अनन्तगुना

---

१. स्वामी विवेकानन्द को लिखित

२. स्वामीजी ने उनके जन्मदिन पर 'आशीर्वाद' के रूप में एक कविता लिखकर भेजी थी, जिसके उत्तर में यह पत्र लिखा गया। कविता का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है –

माँ का हृदय, वीर की दृढ़ता, मलय-पवन की मधुता
ज्वलन्त आर्य-वेदी की पावन, शक्ति और मोहकता –
ये वैभव सब, अन्य और जो, जन के स्वप्न बने हों –
तुम्हें सहज ही आज प्राप्य हों, (निश्छल भाव सने हों।)
भारत के भावी पुत्रों की, गूँजे तुममें वाणी
मित्र, सेविका और बनो तुम, मंगलमय कल्याणी॥

अधिक आपसे प्रेम तथा आपकी सेवा कर सकेंगी।

आपकी पुत्री,
मार्गट

१४. *डेट्राएट, १८ जनवरी १९००* : स्वामीजी के साथ अपने सम्बन्ध के चलते अब तक मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ है; और मैं निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि इस बात से मैंने किसी को भी अवगत नहीं कराया है।

परन्तु अनुभव हमेशा ही सिद्धान्तों को काटता है।

इस यात्रा के दौरान लगा कि मुझे चलने को पाँव मिल गये हैं और जगदम्बा हर कदम पर मेरा मार्गदर्शन कर रही हैं। जब मैं पीछे मुड़कर देखती हूँ, तो लगता है कि यही बात पहले भी सत्य थी। जब मैं स्वाधीन हूँ, तब सब कुछ भलीभाँति चला, परन्तु यह भी आवश्यक था कि लोग एक निश्चित लगाव के साथ मेरे व्यक्तित्व को स्वीकार करें, और जब ऐसा हुआ, तब से मैंने पाया कि मैं सहज भाव से बैठ जाती हूँ और स्वामीजी हमसे जो कुछ कहते हैं, वही उनके सामने प्रस्तुत करती हूँ। मैं स्वयं कुछ भी नहीं करना चाहती, परन्तु अज्ञात भाव से मानो मैं एक वाहिका बन जाती हूँ, मानो मैं बैठकर उनकी बातें सुनती हूँ। जब मुझे पहली बार इसका बोध हुआ, तब मैंने कठोरतापूर्वक स्वयं को रोका, क्योंकि भले ही मेरे लिये यह सन्तोषजनक होता, परन्तु उनके विचारों की चोरी की स्वीकृति से एक विवाद की सृष्टि होती। अब मुझे लगता है कि यह ठीक ही है और परवाह नहीं करती। क्या एक पुत्री अपने पिता के सन्देश को सुनाते हुए आनन्द की अनुभूति नहीं करेगी?

१५. *शिकागो, २६ जनवरी १९००* : मुझे प्रतिदिन ऐसा बोध हो रहा है कि एक तरह से कहें, तो काली के कार्य हमारे कार्य के समान नहीं हैं। वे एक व्यक्ति को मार्ग से हटा देती हैं, और जहाँ किसी के पास से कोई सहायता पाने की कल्पना तक न होने के कारण लौटने के सिवा अन्य कोई चारा नहीं था, वहीं हम देखते हैं कि उसके स्थान पर एक अन्य व्यक्ति तैयार खड़ा है।

क्या मैं तुम्हें लिख चुकी हूँ कि कैसे पिछले पड़ाव पर इस सप्ताह के आरम्भ में जो व्यक्ति मेरे लिये सर्वाधिक कष्टदायक था, वही बाद में मेरा सबसे बड़ा सहायक हो गया? और यहाँ पर भी ठीक वही बात हुई – दो-तीन सबलतम कर्मी ही सर्वाधिक समस्या की सृष्टि करनेवाले हैं। अब मेरी समझ में यह भी आ रहा है कि महान् वैराग्य तथा मन्द वैराग्य के लक्षणों में कितना अन्तर होता है और स्वामीजी के विषय में हमारे साझे मित्र की अन्धता पर मैं प्रतिदिन हँसा करती हूँ। यह देखकर बड़ा अद्भुत लगता है कि किस प्रकार के हर तरह के लोगों के साथ मिल-जुल लेते हैं, निरपेक्ष भाव से ज्ञान के आलोक का वितरण करते हैं या फिर स्वेच्छापूर्वक स्वयं को समेट लेते हैं और अपने विषय में लोगों के मतामत की परवाह नहीं करते।

इस बात का मुझे तब अनुभव हुआ, जब एक नगर में स्वागत-सत्कार पाने के बाद मैं एक अन्य नगर में पहुँची और पाया कि अपने विषय में लोगों के कृत्रिम व्यवहार के विषय में शिकवे-शिकायत कर रही हूँ – ऐसी परिस्थितियों में स्वामीजी की कैसी महानता प्रकट होती थी! और यदि सम्भव होता तो मैं जिन लोगों से तत्काल जान छुड़ा लेती, वे ही जगदम्बा द्वारा निर्धारित यंत्र सिद्ध हुए। इस प्रकार वे लोग स्वामीजी की कार्य-प्रणाली का सत्यापन करनेवाले सिद्ध हुए। स्वामीजी का वह बेपरवाही का भाव भी कितना महिमामय है! स्वयं को सभी शक्तियों का स्वामी समझना और भव्य योजनाएँ बनाकर नियति को मजबूर करना, इससे बढ़कर आकर्षक और क्या हो सकता है! पर स्वामीजी बस प्रतीक्षा करते और तरंगों पर बहते रहते हैं। आदि, आदि। मैंने उनकी महानता को समझना अभी आरम्भ ही किया है।

१६. *न्यूयार्क, ४ जून १९००* : तुम मेरा स्वभाव जानती हो कि कोई भी चीज मुझे तब तक सत्य या सम्पन्न नहीं प्रतीत होती, जब तक कि मैं उसे किसी प्रकार बोल या लिख नहीं लेती।

स्वामीजी ने अभी-अभी व्याख्यान दिया है।

मैं पहले ही जाकर दूसरी पंक्ति के बायें किनारे की सीट पर बैठ गयी, लंदन के हर व्याख्यान में मेरा वही स्थान रहा करता था, यद्यपि उस समय मैंने इस बात पर गौर नहीं किया था।

इसके बाद जब हम लोग बैठकर प्रतीक्षा कर रहे थे, तभी मेरा मन बुरी तरह सिहर उठा, क्योंकि मुझे अनुभव हुआ कि यद्यपि यह बड़ा सहज प्रतीत होता है, परन्तु यही मेरे जीवन की परीक्षा की घड़ी है। जब से मैंने यह जीवन स्वीकार किया है, तबसे कितना कुछ आया और चला गया है! मेरा अपना जीवन – यह कहाँ था? खो चुका था, घिसे-पिटे वस्त्र की भाँति फेंका जा चुका था, ताकि मैं इन महामानव के चरणों में नतमस्तक हो सकूँ। क्या यह एक भूल या छलावा सिद्ध होगा; या फिर यह विजयपूर्ण चयन होगा; अगले कुछ मिनटों में ही पता चल जायेगा।

इसके बाद वे आये। उन्होंने प्रवेश किया और उनका खड़े होकर शुरू करने के लिये चुपचाप इन्तजार करना – यह सब कुछ मानो कोई महान् स्तोत्र था। अपने आप में मानो पूजा की एक पूरी प्रक्रिया थी।

आखिरकार अपना मुखमण्डल परिहास से उद्भासित करते हुए उन्होंने पूछा कि उन्हें किस विषय पर बोलना है। किसी ने सुझाया – 'वेदान्त दर्शन' और वे बोलने लगे।

अद्वैत का अर्थ है सबका एकत्व। ''और इसलिये सभी

वस्तुओं का अन्तिम सार-सर्वस्व है – एकत्व। हम जिसे अनेक के रूप में – भलाई, प्रेम, दु:ख, संसार के रूप में देखते हैं, वह सब वस्तुत: ईश्वर है। ... हम अनेक देखते हैं, तथापि सत्ता केवल एक ही तत्त्व की है। ... केवल उसकी अभिव्यक्ति के परिमाण में भेद से ही उनके नामों में भेद है। आज का जड़ पदार्थ भविष्य का चैतन्य है। आज का कीट, कल का देवता है। ये भेदभाव, जिनसे हमें इतना प्रेम है, ये सभी एक असीम वस्तु के अंश हैं और वह एक असीम वस्तु है – स्वाधीनता की प्राप्ति। ...

"हमारे सारे संघर्ष स्वाधीनता के लिये हैं – हम दु:ख या सुख नहीं, बल्कि स्वाधीनता ढूँढ़ते हैं। मनुष्य की जलती हुई अतृप्त पिपासा कभी सन्तुष्ट नहीं होती – सर्वदा 'और अधिक' माँगती रहती है। तुम अमेरिकी लोग सर्वदा 'और अधिक' पाने की कोशिश में लगे रहते हो। गहराई में देखें, तो यह इच्छा मनुष्य की असीमता का द्योतक है। क्योंकि असीम व्यक्ति तभी सन्तुष्ट हो सकता है, जब उसकी इच्छा असीम हों और परिपूर्ति भी असीम हो। ..."

इस प्रकार उनकी अद्‌भुत वाग्धारा प्रवाहित होती रही और हम मानो अनन्त में उन्नीत कर लिये गये, जो हम सामान्य लोगों की दृष्टि से वैसा ही है, मानो छोटे बच्चे चाँद या सूर्य को खिलौने समझकर उन्हें पकड़ने के लिये हाथ फैला रहे हों। उनकी अद्‌भुत वाणी बहती रही –

"असीम की भला कौन सहायता कर सकता है! ... यहाँ तक कि जो हाथ अन्धकार से तुम्हारी ओर आनेवाला है, वह भी तुम्हारा अपना ही हाथ होगा।"

फिर उस ठहरी हुई हृदय-विदारक पीड़ा के साथ, जिस का आभास अन्य कोई भी पीड़ा नहीं दे सकती, वे बोले – "हम असीम स्वप्नद्रष्टा ससीम स्वप्नों को देख रहे हैं।"

जो लोग कहते हैं कि विचार ही सब कुछ है, वाणी का कोई महत्त्व नहीं, वे भूल कर रहे हैं। क्योंकि शब्दों का काव्य केवल वाणी के उत्थान तथा पतन के संगीत द्वारा ही झंकृत हो सकता है। और यही जीवन के बाजार में इस पूरे घण्टे को एक विराम-विश्राम बनाता है और साथ ही किसी मन्द-प्रकाश वाले प्रार्थनागृह के गलियारों में सुना जानेवाला स्तोत्र-गीत बनाता है।

अन्त में, इन विचारों के साथ उपसंहार हुआ – "मैं जो यहाँ खड़ा होकर तुम्हें देख और तुमसे बोल रहा हूँ, यदि क्षण भर के लिये भी उस असीम एकत्व में व्यवधान आ जाय, यदि एक परमाणु को भी कुचलकर उसके स्थान से हटाया जा सके, तो मैं क्षण भर के लिये भी तुम्हें देख या तुमसे बोल नहीं पाता। ... हरि ॐ तत् सत्!"[३]

३. द्र. विवेकानन्द साहित्य, प्र.सं., खण्ड ६, पृ. २८६-८७

जहाँ तक मेरा सवाल है – जीवन हमारे लिये जो कुछ प्रस्तुत करता है, उसमें मुझे अनन्त गहराईवाली चीजें मिली हैं। यदि कुछ हुआ है, तो बस इतना ही हुआ है – वहाँ बैठना और सुनते रहना। तो भी बौद्धिक चंचलता का संघर्ष – किसी नवीनता की सिहरन अब नहीं रही।

वहाँ पर खड़ा हुआ व्यक्ति मानो मेरे पूरे जीवन को अपनी हथेली में लिये हुए था। व्याख्यान के दौरान उन्होंने दो-एक बार मेरी ओर देखा और मैं अपने हृदय में जिस बात का अनुभव कर रही थी, वही मैंने उनके नेत्रों में भी देखी – अपने लक्ष्य के प्रति पूर्ण श्रद्धा और दृढ़ निष्ठा। ये दोनों किसी भी अन्य भाव की अपेक्षा महत्तर हैं। ... स्वामीजी कहते हैं – "मूर्ख आदमी यह भूल जाता है कि सारा संग्रह बाद में वितरण करने के लिये ही होता है।"

१७. *न्यूयार्क, १६ जून[४] १९००* : आज सुबह उनकी गीता की कक्षा अपूर्व थी। वह इस विषय पर एक सुदीर्घ चर्चा के साथ आरम्भ हुई कि सर्वोच्च आदर्श सबके लिये नहीं हैं। कुष्टग्रस्त सन्त ने अपने घाव से गिरे हुए कीड़े को उठाकर फिर वहीं रखते हुए कहा था – "खाओ भाई, खाओ"; अहिंसा का आदर्श उस व्यक्ति के लिये नहीं है, जो इस वृत्ति को घृण्य या बीभत्स समझता है। अहिंसा का प्रयोग एक क्रुद्ध शिशु के प्रति माँ के स्नेह के समान होता है। यह कायर के मुख से निकलनेवाला या सिंह से सामना होने पर उच्चरित होनेवाला एक बहाना है।

वे बोले – "हमें सच्चा बनना होगा। हमारी जीवन-ऊर्जा का ९० प्रतिशत अंश लोगों के मन में अपने विषय में ऐसी धारणा बनाने के प्रयास में खर्च होता है, जो हम नहीं हैं। हम जैसा दिखाना चाहते हैं, वैसा बनने की चेष्टा में यदि हम उस ऊर्जा को लगाते, तो वह उसका बेहतर उपयोग होता।" इसके बाद वे इसी प्रकार बोलते गये। इसका प्रारम्भ एक अवतार को प्रणाम से हुआ था।

**हे जगद्‌गुरु, आपके चरणों में प्रणाम है,**
**आपका पादपीठ देवताओं द्वारा भी पूजा जाता है।**
**आप अद्वैत अखण्ड आत्मा हैं,**
**संसार के रोगों के वैद्य हैं।**
**हे देवताओं के भी गुरु,**
**आपको हमारा प्रणाम है।**

तस्मै श्रीगुरवे नम:, तस्मै श्रीगुरवे नम:, तस्मै श्रीगुरवे नम: – आपको हमारा प्रणाम है, प्रणाम है, प्रणाम है।

पूरे व्याख्यान में यह भाव निहित था कि समस्याओं पर

४. यद्यपि मूल ग्रन्थ में इसे १५ जुलाई का बताया गया है, तथापि भगिनी निवेदिता की अंग्रेजी पत्रावली में इसे १६ जून का कहा गया है, कदाचित् मुद्रण की भूल से ऐसा हुआ है। – अनु.

पकड़ की दृष्टि से ईसा तथा बुद्ध – दोनों ही कृष्ण की तुलना में छोटे थे। ईसा तथा बुद्ध ने जीवन के सर्वोच्च नीतियों का प्रचार किया, जबकि कृष्ण ने पूरे समाज के विभिन्न अंगों के लिये भिन्न-भिन्न आदर्शों का प्रचार किया। उनकी इस घोषणा के पीछे यही भाव निहित था – "(ईसा का) पर्वतोपदेश (Sermon on the Mount) मनुष्य की अन्तरात्मा के लिये एक अन्य बन्धन बन गया है !"

अब उनके सभी व्याख्यानों में जीवन का यथार्थ रूप से समझने तथा उसके प्रति सहानुभूति का भाव ही व्यक्त होता है। अब 'नेति-नेति' के भाव पर ज्यादा बल न होकर, उस की जगह 'वह देखो, ऐसा होगा' जैसे भाव ध्वनित होते हैं। पर मुझे भय है कि अब पहली बार सुननेवाले लोगों के लिये उन्हें समझना पहले से भी अधिक दुरूह हो गया है।

दोपहर के भोजन के बाद उन्होंने बंगला काव्य और उसके बाद नक्षत्र-विज्ञान पर चर्चा की। उन्होंने इस मनमौजी शंका को स्वीकार किया कि कहीं तारे केवल दृष्टिभ्रम मात्र तो नहीं हैं ! क्योंकि यदि मनुष्य के रहने योग्य पृथ्वी के समान करोड़ों ग्रह विद्यमान हों, तो फिर हमारे समान, किसी अन्य उन्नत रूप से विकसित ग्रह के जीव ने अब तक हमें सन्देश भेजने का प्रयास क्यों नहीं किया !

उन्होंने सुझाया कि भौतिक धारणाओं में अतीन्द्रियता के तत्त्व को अस्वीकार करने की (वर्तमान) राष्ट्रीय प्रवृत्ति के कारण ही हिन्दू चित्रकला तथा मूर्तिकला को बीभत्स कहा जा रहा है। उन्होंने बताया कि वे स्वयं के अनुभव से यह जानते हैं कि अधिकांश भौतिक या जागतिक वस्तुओं के अतीन्द्रिय प्रतीक हुआ करते हैं, जो जड़वादी की दृष्टि में बहुधा उनके भौतिक रूप की तुलना में बीभत्स प्रतीत होते हैं। कल उन्होंने मुझे बताया कि बचपन में उन्हें शायद ही कभी पता चलता था कि वे कब निद्रामग्न हो गये। रंगीन ज्योति का एक पुंज उनकी ओर आता और वे मानो रात को उसी के साथ खेलते रहते। कभी-कभी वह पुंज उनके स्पर्श करके फटकर आलोक में बदल जाता और वे निद्रा में डूब जाते। श्रीरामकृष्ण ने सर्वप्रथम उनसे जो प्रश्न किये थे, उनमें से एक यह भी था – "क्या तुम सोते समय एक ज्योतिपुंज देखते हो?" उन्होंने उत्तर दिया – "जी हाँ, क्या सभी लोग इसी प्रकार नहीं सोते?"

एक संन्यासी का कहना है कि यह एक अतीन्द्रिय शक्ति है, जो इस बात का द्योतक है कि उन्होंने ध्यान की शक्ति के साथ ही जन्म लिया था, न कि उसे इस जन्म में अर्जित किया। एक बात मैं निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ कि अपनी अनुभूति के किसी भी स्तर को कभी भी न भूलने का जो गुण स्वामीजी में विद्यमान है, वह महापुरुषों का एक लक्षण है। यह भी उनके द्वारा बुद्ध के उस अन्तिम दर्शन का एक अंश रहा होगा।

जब हम लक्ष्य पर पहुँच जायेंगे, तब हमें अपने पिछले जन्मों के बारे में जिज्ञासा न रह जायेगी। तब हमारे लिये अपनी अनुभूति के सोपानों का ही महत्त्व रह जायेगा; मारिया टेरेसा और पेट्रार्क तथा लारा की हमारे लिये कोई उपयोगिता नहीं रह जायेगी। यही बात वे समझाते हैं। अब मैं उनके पास बैठकर सुनती हूँ और सब कुछ बुद्धि को बड़ा सहज तथा इच्छा-शक्ति को इतना दुरूह प्रतीत होता है कि मैं स्वयं से कह उठती हूँ – "पूर्व के दिनों में कैसे अँधियारे बादलों ने मुझे ढँक रखा था? निश्चय ही कोई भी वैसा अन्धा या अज्ञानी न रहा होगा !" जब तुम सोचती थी कि मैं कठोर और असंवेदशील हूँ, तो तुम्हारी धारणा सच ही रही होगी। मैं वैसी ही रही होऊँगी और यह दीर्घ काल तक भावनाओं का सहारा लिये बिना केवल मन द्वारा ही वस्तुओं को देखने की चेष्टा का फल रहा होगा।

स्वामीजी कहते हैं कि अब वे भक्ति तथा भावुकता के विरुद्ध और इससे छुटकारा पाने को दृढ़ संकल्प हैं। परन्तु वे जिस मन तथा हृदय के साथ इसे आरम्भ करते हैं; और उनकी वह एकता कितनी प्रबल है। वे इन दोनों में से किसी भी एक को छोड़ सकते हैं, क्योंकि उनमें दोनों ही पूर्ण रूप से विकसित हैं, और बाकी सब कुछ केवल साधना मात्र है। मैं सोचती हूँ कि हम में से अधिकांश के लिये अधिक-से-अधिक संवेदनशील होना ही अच्छा होगा।

१८. *न्यूयार्क, २४ जून १९००* : मैं जिस मकान में ठहरी हूँ, स्वामीजी लोग भी उसी में अतिथि हैं।

मैंने अभी-अभी पूजनीय माँ (श्रीमती ओली बुल) को एक सांत्वनादायी पत्र लिखते हुए अपनी अमेरिकी यात्रा को समेट लिया है। पत्र में मैंने स्नेहमयी माँ को बताया है कि किस प्रकार अब उनका भाग्य पलट गया है और वे एक देवता के समान पूजित हो रहे हैं। यह अनुमान लगाने का कार्य मैंने उन्हीं पर छोड़ दिया है कि पृथ्वी के सारे राजमुकुट उनके चरणों में लोट रहे हैं।

परन्तु सचमुच यह सब सत्य है ! इस समय वे जैसी अवस्था में हैं, जिसमें कुछ भी उन्हें रोक नहीं सकता।

आज पूर्वाह्न में ११ बजे उनका 'मातृ-उपासना' पर व्याख्यान होगा, और उसका प्रत्येक शब्द तुम्हें प्राप्त होगा, भले ही मुझे उसे लिपिबद्ध कराने के लिये १० डालर भी खर्च करने पड़ जायँ। कल उनके सामने ही किसी ने मुझसे यह बात कही और इस पर वे मेरी ओर मुड़े तथा मुस्कुराते हुए बोले – "हाँ, 'मातृ-उपासना'। इसी विषय पर मैं बोलने जा रहा हूँ और यही मुझे प्रिय भी है।"

शेष अगले पृष्ठ पर

# माँ और बाबूराम महाराज

*स्वामी सम्बुद्धानन्द*

माँ श्री सारदा देवी दैवी मातृत्व की जीवन्त विग्रह थीं। उनके अनेक शिष्यों तथा भक्तों ने उनकी मधुर-पावन स्मृतियाँ लिपिबद्ध कर रखी हैं। हमारे लिए बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' से इस लेख का अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। – सं.)

### एक दिन की बात

१९१४ ई. के अप्रैल के मध्य में एक दिन सुबह मैं अपने एक सिपाही गोपीनाथ दास को साथ लेकर बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द) से मिलने गया। उसके कुछ ही दिन पहले बाबूराम महाराज ढाका, मैमनसिंह आदि स्थानों का भ्रमण करके लौटे थे और उस समय बागबाजार के बलराम-मन्दिर में निवास कर रहे थे। बाबूराम महाराज मुझे पहले से पहचानते थे। हम दोनों ने महाराज की चरणधूलि ली। फिर मैं अपने मित्र को दिखाकर बोला – "महाराज, मेरे इस मित्र का घर मालदा में है। बेलूड़ मठ का उत्सव इसे इतना अच्छा लगा है कि यह अपने गाँव में भी ठाकुर का एक विराट् उत्सव आयोजित करना चाहता है। इन सबकी हार्दिक इच्छा है कि उत्सव के समय मालदा में आपका शुभ पदार्पण हो।"

बाबूराम महाराज – अच्छा! क्या सचमुच उत्सव करोगे? कब?

मैं – जी, ज्येष्ठ के महीने में।

बाबूराम महाराज – पूर्वबंग से लौटने के बाद मेरे मन में बार-बार आ रहा था कि राजसाही (उत्तरी बंगाल) की तरफ क्या मुझे कोई नहीं बुलायेगा? अब देखता हूँ सोचते-ही-सोचते मालदा से बुलावा आ गया। ठाकुर का उत्सव करोगे, यह तो अच्छी बात है। देखोगे, वे ही कृपा करके सब प्रकार की सहायता जुटा देंगे।

गोपीनाथ – महाराज, हम लोग धीरेन[१] को ले जा रहे हैं। धीरेन के वहाँ रहने से हमें हर तरह की सुविधा रहेगी।

बाबूराम महाराज – हाँ, जरूर ले जाओ। वह सब दिखा देगा। (मेरी ओर उन्मुख होकर) – क्यों रे, तो तू जा रहा है?

मैं (धीरेन) – इन लोगों ने पकड़ लिया है, जाना ही पड़ेगा। आप क्या आदेश दे रहे हैं?

बाबूराम महाराज – ठीक है, चला जा, सब सिखा-समझा देना।

मैं – वहाँ उत्सव का सारा प्रबन्ध हो जाने और दिन निर्धारित हो जाने पर मैं यथासमय आपको सूचित करूँगा। तैयार रहियेगा। हम लोग आपको लेने आयेंगे।

इसी प्रकार थोड़ी देर बातचीत करने के बाद हम लोगों ने बाबूराम महाराज को प्रणाम करके विदा ली।

पुराने मालदा के उत्तरी अंचल में कटरा बाजार नाम के एक लम्बे-चौड़े खुले मैदान को उत्सव के लिये चुना गया।

१. लेखक के पूर्वाश्रम का नाम धीरेन – धीरेन्द दासगुप्त था।

पिछले पृष्ठ का शेषांश

एक दिन सुबह मैंने उन्हें कुछ सलाह दी, जो उन्हें भूल प्रतीत हुई। अहा, उस समय यदि तुमने उन्हें देखा होता! ऐसी एक झलक पाने को वह नाराजगी भी स्वीकार्य है।

उन्होंने कहा – "याद रखो कि मैं मुक्त हूँ – मुक्त हूँ – जन्म से ही मुक्त हूँ।" और इसके बाद वे जगदम्बा के बारे में बोलने लगे और बताने लगे कि वे किस प्रकार कार्य करना चाहते हैं और यदि वे हिमालय में जाकर ध्यान में बैठ जायँ, तो दुनिया छिन्न-भिन्न हो जायेगी। यूरोपीय लोगों ने कभी धर्म का प्रचार नहीं किया, क्योंकि वे सर्वदा योजनाएँ ही बनाते रहे; कुछ कैथॅलिक सन्त ही यह कर सके थे। उन्होंने बताया कि वे स्वयं नहीं, बल्कि जगदम्बा ही सब कुछ रह रही हैं और वे जो कुछ भी करें, उसका वे समान रूप से स्वागत करेंगे। एक बार जब शिव उमा के साथ कैलाश में बैठे थे, तो वे सहसा उठकर कहीं जाने लगे। उमा ने पूछा – कहाँ चले। वे बोले – "वह देखो, मेरा वह सेवक मार खा रहा है। मुझे जाकर उसे बचाना होगा।" क्षण भर बाद ही शिव के लौट आने पर उन्होंने पुनः पूछा – लौट क्यों आये। उत्तर मिला – "मेरी जरूरत नहीं है। वह खुद ही अपनी रक्षा कर रहा है।"

इसके बाद विदा लेने के पूर्व उन्होंने मुझे यह कहते हुए आशीष दिया – "ठीक है, ठीक है! तुम माँ की सन्तान हो।" और वह क्षण इतना महान् था कि मैं बड़ी अभिभूत होकर वहाँ से चली गयी।

(*Prabuddha Bharata*, January-December 1935)

नगर के प्रमुख नागरिकों ने इसके लिये ३० मई से १ जून निर्धारित किये।

मालदा के सभी श्रेणी के लोगों के पास उत्सव का निमंत्रण-पत्र भेजा गया। सुदूर पूर्वी बंगाल के भी विशिष्ट भक्तों को निमंत्रण-पत्र भेजे गये।

उत्सव की तारीख निर्धारित हो जाने के कुछ दिन बाद मैंने स्वामी प्रेमानन्द महाराज को उत्सव के सम्बन्ध दो-एक पत्र लिखे। समय बीता जा रहा था, उत्तर न आते देख मैं चिन्तित हो उठा। सोचा कि यदि और दो-एक दिन में उत्तर नहीं आया, तो क्या 'तार' देना उचित होगा! उसी समय बाबूराम महाराज का उत्तर आ पहुँचा। पत्र का मर्म इस प्रकार था – तुम्हारा पत्र यथासमय प्राप्त हुआ। इस बीच मैं व्यस्त था, अत: उत्तर देने में थोड़ा विलम्ब हुआ। आशा करता हूँ कि तुम बुरा नहीं मानोगे। तुम – मालदा के भक्तगण प्रभु के नाम पर विराट् उत्सव कर रहे हो, यह जानकर मुझे अपार आनन्द हुआ। प्रभु की कृपा से वहाँ का उत्सव निर्विघ्न और आनन्दपूर्वक सम्पन्न हो। इस समय स्वामी सारदानन्द काफी बीमार हैं। ऐसी स्थिति में वहाँ उत्सव में शामिल होना मेरे लिये सम्भव नहीं होगा। इस कारण तुम लोग बिल्कुल भी निरुत्साहित मत होना। निश्चित जानना कि प्रभु तुम लोगों की हर प्रकार से सहायता करेंगे। तुम सभी मेरा हार्दिक स्नेह-आशीर्वाद आदि स्वीकार करना।

बाबूराम महाराज का पत्र पढ़कर मैं निरुत्साहित तो हुआ, परन्तु पूर्णत: निराश नहीं हुआ। आयोजकगण यह समाचार पाकर बिल्कुल ही ठण्डे पड़ गये। उस समय उत्सव आरम्भ होने में केवल बारह-तेरह दिन ही बाकी थे – समय भी काफी कम था। उत्सव की तिथियाँ बदली जा सकती हैं या नहीं – इस विषय में बेलूड़ मठ जाकर बाबूराम महाराज से भेंट करके वस्तुस्थिति समझे बिना कुछ भी निश्चित नहीं किया जा सकता था। आयोजकों के साथ सलाह करके निश्चित हुआ कि मैं दो युवा कर्मियों के साथ २३ मई को बेलूड़ मठ जाऊँगा और बाबूराम महाराज के साथ मुलाकात करने के बाद पत्र भेजूँगा। इसके पूर्व उत्सव के तिथि-परिवर्तन पर कोई चर्चा नहीं होगी।

२३ मई को दो कर्मियों के साथ मैं कोलकाता के लिये रवाना हुआ। अगले दिन सुबह सियालदह पहुँचते ही सबसे पहले मैं आर्महर्स्ट स्ट्रीट में पूजनीय श्री 'म' से भेंट करने गया, क्योंकि मास्टर महाशय से स्वामी सारदानन्द महाराज के स्वास्थ्य के विषय में जानकारी प्राप्त हो सकती थी। मास्टर महाशय के मुख से स्वामी सारदानन्द महाराज की शारीरिक कुशलता का समाचार पाकर हमारे निराश हृदय में आशा का संचार हुआ। वहाँ से हम लोग बागबाजार में स्थित उद्बोधन कार्यालय – 'मायेर-बाड़ी' गये। वहाँ हम लोग यह जानकर निश्चित हुए कि स्वामी सारदानन्द महाराज अन्न पथ्य ले रहे हैं। हम लोग तत्काल बागबाजार घाट से एक नौका किराये पर लेकर बेलूड़ मठ गये। मठ के घाट से नौका के काफी दूर रहते ही मैंने देखा – बाबूराम महाराज मठ-भवन के दक्षिण-पूर्व के तटबन्ध पर खड़े होकर स्नान की तैयारी कर रहे हैं। हमारे आनन्द और उत्साह की सीमा न रही। हम लोग 'जय गुरु महाराज जी की जय', 'महामाई की जय' की ध्वनि करने लगे। बाबूराम महाराज ने जयध्वनि सुनकर नाव की ओर देखा और निकट खड़े एक ब्रह्मचारी से कहा – "देख तो, कौन लोग आये हैं?" किसी-किसी ने घाट पर खड़े होकर हम लोगों को देखा और स्वामी प्रेमानन्द को हम लोगों का परिचय बताया। हम तीनों ने नौका से उतरकर गंगाजल से हाथ-पाँव धोया और सबसे पहले ठाकुर के मन्दिर में गये और उसके बाद बाबूराम महाराज की चरणधूलि लेने नीचे आये। महाराज हम लोगों को देखते ही बोले – "तुम लोग आये हो? सोच रहा था कि तुम लोगों ने मुझे बुलाया ही नहीं!" और दो-चार बातें पूछने के बाद महाराज ने हम लोगों को स्नान आदि करने को कहा।

यथासमय स्नान-भोजन आदि से निवृत्त होकर थोड़ी देर विश्राम करने के बाद शाम को मैं बाबूराम महाराज के साथ टहलने लगा और उनका जाना कब हो सकता है, इसी विषय में पूछने का सुयोग देखने लगा। काफी देर तक घूमने-फिरने और विभिन्न कार्य देखने और दिखाने के बाद बाबूराम महाराज जब पूर्वी बरामदे में स्थित बड़ी बेंच पर बैठ गये, तब उक्त प्रसंग उठाने का उपयुक्त अवसर देखकर मैंने उनसे पूछा – "महाराज, यहाँ से कब रवाना होने में आपको सुविधा होगी, यह बता देने पर बड़ी सुविधा होती।"

बाबूराम महाराज – अभी-अभी तो आये हो और अभी से रवाना होने की बात? आये हो, तो दो-एक दिन विश्राम कर लो!

मैं – दो-एक दिन तो ऐसे ही बीत जायेंगे। वहाँ सभी लोग उद्विग्न हो रहे हैं। हम लोगों के मालदा जाने की तारीख उन्हें सूचित कर देने पर वे लोग निश्चिन्त हो जाते।

बाबूराम महाराज – जाना क्या मेरी इच्छा से होता है?

मैं – तो फिर किसकी इच्छा से होता है, महाराज?

बाबूराम महाराज – यदि ठाकुर की इच्छा हो, तभी जाना होगा। हम लोग तो न जाने कितनी सब इच्छाएँ करते रहते हैं, परन्तु भला कितने कार्य अपनी इच्छा से कर पाते हैं?

मैं – ठाकुर की इच्छा कैसे जान पाते हैं, महाराज?

बाबूराम महाराज – क्यों? बागबाजार में साक्षात् माँ जगदम्बा हैं। उनसे पूछने से ही होगा। वे यदि अनुमति दें, तभी जाना हो सकेगा।

मैं – माँ से मिलने कब जाना चाहते हैं?

बाबूराम महाराज – चलो न, कल सबेरे ही चला जाये। सुबह बहुत-सी नौकाएँ इधर से कोलकाता की ओर जाती हैं। किसी को भी आवाज देने से ही वह आकर हमें ले जायेगा।

मैं मानो आशा और निराशा के तरंगों में पड़कर डूबने-उतराने लगा। मन बड़ा उद्विग्न हो गया था। अगले दिन सुबह उठकर गंगा के किनारे खड़ा हो गया। एक नाव को बुलाया। नाव के घाट पर लगने पर सोचा कि अब बाबूराम महाराज को बुलाऊँ। तभी देखा कि महाराज स्वयं ही आकर नौका में सवार हो गये।

थोड़ी देर में ही नाव बागबाजार घाट पर पहुँच गयी। हम लोग मातृ-मन्दिर में गये। स्वामी सारदानन्द महाराज नीचे के छोटे कमरे में बैठे थे। वहीं पर बाबूराम महाराज उनके साथ बातचीत करने लगे। कुछ देर बाद खबर आयी कि बाबूराम महाराज माँ का दर्शन करने जा सकते है। बाबूराम महाराज ऊपर गये। मैं भी उनके पीछे-पीछे गया। बाबूराम महाराज ने माँ को साष्टांग प्रणाम किया और घुटने के बल हाथ जोड़कर बैठ गये। मैं भी माँ को प्रणाम करके एक किनारे बैठा। माँ खाट पर दक्षिण-पूर्वी कोने में दोनों पैर लटकाये बैठी थीं, सिर पर आधे ललाट तक वस्त्र था, मुख आधा अनावृत था। एक ब्रह्मचारी हाथ में पंखा लिये माँ की एक ओर खड़े थे।

माँ – कैसे हो, बाबूराम?

बाबूराम महाराज – अब अच्छा ही हूँ, माँ।

माँ – मठ का सब कुछ ठीक है न?

बाबूराम महाराज – मठ का सब ठीक है, माँ।

माँ – और क्या समाचार है?

बाबूराम महाराज – माँ, मैं तो मूर्ख मनुष्य हूँ। मुझे लेकर सभी खींच-तान करते हैं। (मुझे दिखाकर) ये लोग मालदा से आये हैं। वहाँ ठाकुर का उत्सव होगा, ये लोग मुझे वहाँ ले जाना चाहते हैं।

माँ – वह तो बहुत दूर है। इधर तुम्हारी तबीयत भी तो खराब हुई थी न?

बाबूराम महाराज – हाँ, बारह-चौदह दिन पहले एक बार बुखार आया था।

माँ – तो इस गर्मी के दौरान एक बार बीमार पड़ चुके हो, इसलिये इतनी दूर न जाना ही ठीक होगा।

बाबूराम महाराज – ठीक है माँ, अच्छा है, वैसा ही होगा।

बाबूराम महाराज इतना कहकर धीरे-धीरे नीचे उतर आये। उन्हें देखकर लगा मानो माँ ने उनके इच्छानुरूप ही आदेश दिया है और वे अत्यन्त आनन्दित हैं। नीचे स्वामी सारदानन्द के साथ उनकी फिर विविध विषयों पर बातें होने लगीं।

इधर मेरे मन की जो अवस्था हो रही थी, उसे शब्दों में व्यक्त कर पाना असम्भव है। कुछ देर तक तो मैं किंकर्तव्यविमूढ़ रहा, इसके थोड़ी देर बाद माँ से सारी बातें निवेदित करके बोला – "माँ, आज डेढ़-दो महीने से मालदा में ठाकुर के उत्सव की तैयारी चल रही है। सबका बहुत दिनों से संकल्प है कि बाबूराम महाराज को ले जाकर उत्सव करेंगे। सभी आस लगाये बैठे हैं। उनके न जाने से हजारों लोग निराश हो जायेंगे और आयोजकगण हताश हो जायेंगे। मालदा अधिक दूर नहीं है, माँ! रात को खा-पीकर रवाना होने से दोपहर तक वहाँ पहुँचकर भोजन आदि किया जा सकता है। रास्ते में कोई कष्ट नहीं होगा। ऐसा निर्धारित किया गया है कि उन्हें प्रथम या द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में अच्छी व्यवस्था के साथ ले जायेंगे। आपके अनुमति न देने से उत्सव पर पानी फिर जायेगा। अधिक नहीं, तो केवल कुछ दिनों के लिये ही बाबूराम महाराज को जाने की अनुमति न देने पर सब लोग हताश होंगे। सभी लोग कितनी आस लगाये बैठे हैं!"

माँ – तो तुम कहते हो कि वह जगह दूर नहीं है! इतना पास है क्या?

एक ब्रह्मचारी – मालदा, जहाँ से बड़े-बड़े फजली आम आते हैं, माँ!

माँ – हाँ, वह तो बहुत दूर नहीं है।

मैं – हाँ माँ, बिल्कुल भी दूर नहीं है। रात को दस बजे रवाना होने से अगले दिन दोपहर को वहाँ पहुँचा जा सकता है। बाबूराम महाराज को इस प्रकार ले जायेंगे माँ, कि उन्हें कोई असुविधा न हो। आप अनुमति दे दीजिये।

माँ – अच्छा बेटा, तुम सभी लोग यहाँ से जरा जाओ, मुझे थोड़ी देर विचार करने दो।

माँ मन्दिर में अकेली ही रह गयीं। मैंने नीचे आकर देखा, बाबूराम महाराज शरत् महाराज के साथ बातचीत करने में मशगूल थे। मैं सोचने लगा – मालदा जाने के विषय में बाबूराम महाराज ने तो कभी कोई अनिच्छा नहीं व्यक्त की। परन्तु माँ के मना करने पर उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। माँ के आदेश से वे मानो महा आनन्दित होकर नीचे उतर गये। दूसरी ओर मैं भी यह सोचकर विस्मित रह गया कि साधु-महापुरुषों के चरित्र में विपरीत भावों का कैसा अद्भुत सामंजस्य रहता है! कहाँ तो महाराज की यह बात – 'तुम लोगों ने मुझे बुलाया ही नहीं' और कहाँ माँ के – 'इतनी दूर न जाना ही ठीक होगा' कहने पर यह कहना – 'ठीक है माँ, अच्छा है, वैसा ही होगा!'

थोड़ी देर बाद ब्रह्मचारी ऊपर से बोले – "माँ बाबूराम महाराज को बुला रही हैं।" बाबूराम महाराज को बताने पर वे तत्काल पुनः माँ का दर्शन करने गये। मैं भी उनके पीछे-पीछे गया। बाबूराम महाराज मन्दिर में जाकर खड़े हो गये।

माँ – बाबूराम, ये लोग जब इतना कह रहे हैं, तो क्या तुम जाओगे?

बाबूराम महाराज – मैं क्या जानूँ, माँ? मैं क्या जानूँ? आप जो आदेश देंगी, वही करूँगा। पानी में कूदने को कहें, तो पानी में कूद जाऊँगा; आग में कूदने को कहें, तो आग में कूद जाऊँगा: पाताल में प्रवेश करने को कहें, तो पाताल में प्रवेश करूँगा। मैं क्या जानूँ? आपका जैसा आदेश हो !

ये बातें बाबूराम महाराज ने इतने भावावेश में कहीं कि थोड़ी देर के लिये सभी स्तब्ध रह गये। बाबूराम महाराज के नेत्र-मुख आदि सब आरक्त हो उठे थे। कुछ काल के लिये सभी लोग मानो एक अद्भुत भाव में विमुग्ध रहे। माँ भी थोड़ी देर मौन रहीं। वह एक अद्भुत दृश्य था, जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता – 'वह प्राणों में अनुभव की चीज है'। थोड़ी देर बाद माँ की अमृतमयी वाणी से वह निस्तब्धता भंग हुई।

माँ – ये लोग ठाकुर का उत्सव कर रहे हैं, इतना कह रहे हैं, एक बार हो आओ। परन्तु अधिक दिन मत ठहरना।

कुछ देर बाद ही बाबूराम महाराज माँ की चरणधूलि लेकर नीचे उतरे। तब ब्रह्मचारी जी ने मुझे बुलाकर कहा – "अजी, माँ तुम्हें बुला रही हैं, थोड़ा सुनते जाओ।" कमरे में जाकर ज्योंहीं खड़ा हुआ माँ ने मुझसे कहा – "देखो, ये लोग महापुरुष हैं। इनका शरीर जगत् के कल्याण के लिये है। देखना, इनके शरीर पर किसी तरह का अत्याचार न हो।" मैंने कहा – "माँ, यहाँ से मैं प्रथम या द्वितीय श्रेणी के बर्थ आरक्षित करा कर बाबूराम महाराज को ले जाऊँगा। साथ में विभिन्न प्रकार की खाद्य-सामग्रियाँ भी रहेंगी। वहाँ भी अच्छी व्यवस्था की गयी है। हम लोग जी-जान से प्रयास करेंगे कि महाराज को कोई असुविधा न हो। आप बिल्कुल चिन्ता न करें माँ। इस विषय में मेरा पूरा ध्यान रहेगा।" माँ आशीर्वाद देते हुए बोलीं – 'अच्छा बेटा, तो फिर जाओ।"

माँ को प्रणाम करने के बाद मैंने नीचे आकर देखा कि बाबूराम महाराज ढाका इंजीनियरिंग कॉलेज के प्राध्यापक विशेष भक्त तथा कर्मी प्रफुल्ल वन्द्योपाध्याय के साथ बातचीत करते हुये उनसे पूछ रहे हैं – "प्रफुल्ल, तुम मालदा चलोगे क्या? वहाँ बहुत-से नये भक्त देखने को मिलेंगे, खूब आनन्द होगा।" प्रफुल्ल बाबू भी बड़े आग्रहपूर्वक जाने को तैयार हो गये। बाद में बाबूराम महाराज मुझसे बोले – "बलराम मन्दिर में गंगाधर महाराज हैं, चल वहाँ, उनसे मिलकर जायेंगे।" मुझे साथ लेकर महाराज बलराम-मन्दिर गये। जिस कमरे में गंगाधर महाराज थे, वहाँ जाकर बाबूराम महाराज ने उनसे पूछा – "कैसे हो?"

गंगाधर महाराज – और कैसा रहूँगा दादा ! औषध-पथ्य ले रहा हूँ; ऐसे ही एक तरह से चल रहा है।

बाबूराम महाराज – तुम इतने दिनों से यहाँ आये हुए हो, एक बार मठ क्यों नहीं गये? स्वामीजी मठ बना गये हैं और तुम कोलकाता आकर भी मठ नहीं गये?

गंगाधर महाराज – माँ ने मुझे आदेश देकर चिकित्सा के लिये सारगाछी से यहाँ बुलाया है। वैद्यकी दवा चल रही है। यहाँ मैं नियमानुसार औषधि ले रहा हूँ, पथ्य कर रहा हूँ। इस समय कहीं जाने से माँ नाराज होंगी। और तुम लोग तो बैरागी हो ! क्या मेरे पथ्य की व्यवस्था कर सकोगे? (हास्य)

बाबूराम महाराज – ठीक है, चलो, देखना कि मैं तुम्हारा पथ्य दे पाता हूँ या नहीं?

गंगाधर महाराज – इस समय कहीं जाने से, माँ को पता चलने पर, वे डाटेंगीं। शरीर थोड़ा ठीक होने दो न !

परन्तु बाबूराम महाराज किसी भी हालत में उन्हें छोड़ने को तैयार न थे। गाड़ी लाने के लिये आदमी भेजा गया। गंगाधर महाराज को साथ लेकर हम लोग गाड़ी में सवार हुए। इसके बाद वराहनगर घाट से हम लोग नाव द्वारा बेलूड़ मठ पहुँचे। अगले दिन सुबह चर्चा होने लगी कि उत्सव में बाबूराम महाराज के साथ और कौन-कौन जायेगा। निश्चित हुआ कि स्वामी धीरानन्द, ब्रह्मचारी चारुचन्द्र, एंटाली के कृष्ण बाबू, दुर्गानाथ बाबू और कुछ अन्य भक्त साथ जायेंगे। प्रस्थान की तिथि पूछने पर बाबूराम महाराज ने मुझसे कहा – "क्यों, आज ही चलो ना।" मैंने कहा – "आज जाने से बृहस्पतिवार की अशुभ बेला में मठ से निकलना होगा।"

बाबूराम महाराज – माँ ने जब अनुमति दी है, तो फिर बृहस्पतिवार की अशुभ बेला क्या रे?

निश्चित हुआ कि बाबूराम महाराज तथा अन्य साधु लोग शाम को बलराम-मन्दिर में ठहरेंगे और वहीं से रात का भोजन करने के बाद सियालदह स्टेशन से गाड़ी पकड़ेंगे।*

❖ (क्रमशः) ❖

* स्वामी प्रेमानन्द, अद्वैत आश्रम, मायावती, १९९९ पृ. ५६-६९ (पुनर्मुद्रित : उद्बोधन, वर्ष ९६, अंक ३, पृ. १३०-३३)

# दैवी सम्पदाएँ (१६) दया

*भैरवदत्त उपाध्याय*

(गीता में आसुरी गुणों के साथ ही दैवी गुणों का भी निरूपण किया गया है। विद्वान् लेखक ने इस लेखमाला में दैवी गुणों का सविस्तार विश्लेषण किया है और विभिन्न शास्त्रों व आचार्यों के विचारों के आधार पर बताया है कि इन्हें अपने जीवन में कैसे लाया जाय। – सं.)

गीता में जिन २६ दैवी सम्पत्तियों का वर्णन है, उनमें एक दैवी सम्पत्ति दया है। दया मानव-हृदय का नैसर्गिक प्रवाह है, जो दया-पात्र की ओर बिना किसी कामना या अवरोध के प्रवाहित होता है। दया की परिधि में न केवल मनुष्य समाहित है, अपितु पशु, पक्षी, कीट, पतंग तथा वनस्पतियाँ भी समाविष्ट हैं, जिन पर दया हो सकती है। दया या करुणा परदु:ख-कातरता से प्रेरित वाचिक तथा कार्मिक अभिव्यंजना है, जिसमें दया-पात्र के कल्याण की भावना सन्निहित है। यह इकहरी प्रक्रिया है अर्थात् जिस प्रकार से क्रोध या प्रेम दुहरी प्रक्रिया है, प्रेमी एवं प्रेम पात्र दोनों में प्रेम का तथा क्रोधी और क्रोध-पात्र में क्रोध का विनिमय होता है, वैसा दया में नहीं होता। यह मानव का अनिवार्य गुण है। जिसके हृदय में करुणा या दया नहीं है, वह क्रूर पशु से भी निकृष्ट है। जो मनुष्य दूसरे के दु:ख से दु:खी नहीं होता, उसके निवारण का उपाय नहीं करता, वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। मनुष्य की सामाजिकता का आधार यही भाव है। धर्म का सम्पूर्ण प्रासाद दया की ठोस भूमि पर ही टिका है। एक बार यक्ष ने धर्मराज युधिष्ठिर से पूछा – "को धर्म: – धर्म क्या है?" युधिष्ठिर का उत्तर था – "भूतदया – जीवधारियों पर दया।" एक श्लोक में कहा गया कि क्षमा से बढ़कर तप, सन्तोष से अधिक सुख, लोभ से अधिक व्याधि और दया से श्रेष्ठ धर्म नहीं है –

**क्षमापरं तपो नास्ति, न सन्तोषात् परं सुखम्।**
**न च लोभात् परो व्याधिर्नच धर्मो दयापर:।।**

भूतमात्र का परिपालन और समाज-कंटकों का निर्दलन दया है।[१] कृपा, अनुकम्पा, अनुग्रह तथा करुणा, दया के पर्याय हैं। करुणा और दया में सूक्ष्म अन्तर है। करुणा में तटस्थता तथा नैराश्य के भाव हैं,[२] पर दया में नैराश्य जरूरी नहीं है। दोनों का उद्गम पर-दु:ख-सहिष्णुता का अभाव है। मानवीय संवेदना की यही मूल भित्ति है। इसलिये काव्याचार्यों ने "करुण रस" को काव्य की आत्मा कहा है।[३]

महाकवि भवभूति का तो स्पष्ट मत है कि करुण रस ही एकमात्र रस है, कारुणिक संवेग ही मूल संवेग है, जिस प्रकार आवर्त, तरंगों और बुलबुलों के मूल में जल है, उसी प्रकार करुणा विभिन्न संवेगों में अन्तरित होती है।[४] "कृपा या अनुग्रह से भी दूसरों के सुख की योजना की जाती है, पर एक तो कृपा-अनुग्रह में आत्म-भाव छिपा रहता है और प्रेरणा से पहुँचाया हुआ सुख एक प्रकार का प्रतिकार है। ... दूसरों के, विशेषतया अपने परिचितों के, थोड़े क्लेश या शोक पर जो वेगरहित दु:ख होता है, उसे सहानुभूति कहते हैं। शिष्टाचार में इस शब्द का प्रयोग इतना अधिक होने लगा है कि यह निरर्थक-सा हो गया है। अब प्राय: इस शब्द से हृदय का कोई सच्चा भाव नहीं समझा जाता है। सहानुभूति के तार, सहानुभूति की चिट्ठियाँ लोग यों ही भेजा करते हैं। यह छद्म-शिष्टता मनुष्य के व्यवहार क्षेत्र से सच्चाई के अंग को क्रमश: चरती जा रही है।"[५] करुणा या दया में शोक अथवा दु:ख का वेग, तीव्रता तथा घनत्व होना चाहिये। (१) आवश्यकता (२) नियम और (३) न्याय – ये तीन ऐसे घटक हैं, जिनसे दया का संवेग सीमित हो कर अपनी महत्ता को न्यून कर देता है।[६] किन्तु सन्तों, महापुरुषों और परमात्मा

---

१. दया तिचे नाव, भूतांचे पालन आणि निवर्तन कंटकाचें – तुकाराम

२. 'तटस्थं नैराश्यात् – भवभूति।

३. पराश्रितानां क्लेशानामसहिष्णुतयोच्यते।
मनसो यादृशो भाव: स वै करुण उच्यते।। (भाव-प्रकाश)
काव्यस्तात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवे: पुरा।
क्रौन्चद्वन्द्ववियोगोत्थ: शोक: श्लोकत्वमागत:।। (ध्वन्यालोक)
एवम् – निषाद विद्धाण्डज-दर्शनोत्थ: श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोक:।
(रघुवंशम्, १४/७०)

४. एको रस: करुण एव निमित्त-भेदाद्
भिन्न: पृथक्पृथक् इवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्त-बुदबुद्-तरङ्गमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्।। (उत्तर-रामचरितम्)

५. तथा ६. 'करुणा', चिन्तामणि, भाग १, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

की दया इसका अपवाद है। परमात्मा परम कृपालु हैं। वे निष्कारण समानभाव से सभी पर दया करते हैं। सन्त भी पात्र-अपात्र का भेद नहीं करते। आवश्यकता, नियम तथा न्याय से बँधे नहीं होते। उनकी दया तो निर्गुणों पर भी होती है – **निर्गुणेषु सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।**

प्रकाश, चन्द्रिका और वायु के समान दयालु सब पर दया करते हैं। जिस प्रकार अंजलि के शुभ सुमन दोनों हाथों को सुगन्धित करते हैं, उसी प्रकार सन्तों की दया सभी पर एक समान होती है –

**बन्दउं सन्त समान चित हित अनहित नहि कोइ ।**
**अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगन्ध कर दोई ।।**

जहाँ दुर्जनों का स्वभाव दूसरों के सुख को देखकर दु:खी होने का है, वही सन्तों की प्रकृति 'परदुख दुखी सुखी सुख देखे' की है। वे दूसरों के कल्याण के लिये सब कुछ दे सकते हैं। फिर भी उनमें अहंकार नहीं होता। कर्ण ने अपनी त्वचा, शिबि ने शरीर का मांस, जीमूतवाहन ने प्राण और दधीचि ने अपनी हड्डियाँ दे दीं –

**कर्णः त्वचं शिबिर्मासं जीवं जीमूतवाहनः ।**
**ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम् ।।**

महाकवि वाल्मीकि की परपीड़ा करुणा से ओतप्रोत काव्य के रूप में प्रवाहित हुई। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम तो कोमल चित्त, दीनदयालु और अकारण कृपा करनेवाले हैं –

**कोमलचित अति दीनदयाला ।**
**कारण बिनु रधुनाथ कृपाला ।।**

श्री रघुनाथ के समान उदार संसार में कौन है?

**ऐसो को उदार जग माहीं ।**
**बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर**
**राम सरिस कोउ नाहीं ।।**
**जो गति जोग विराग जतन करि**
**नहिं पावत मुनि ग्यानी ।**
**सो गति देत गीध सबरी कहं**
**प्रभु न बहुत जिय जानी ।।**
**जो संपति दससीस अरपि करि**
**रावन शिव पहँ लीन्ही ।।**
**जो सम्पदा विभीषन कहँ अति,**
**सकुच सहित हरि दीन्ही ।।**
**तुलसीदास सब भाँति सकल सुख**
**जो चाहसि मन मेरो ।**
**तौ भजु राम काम सब पूरन**
**करैं कृपानिधि तेरो ।।**

जिनकी कृपा से मतिमन्द तुलसीदास को भी परम विश्राम मिला। उनके समान कोई नहीं है –

**जाकी कृपा लबलेस तें**
**मतिमन्द तुलसी दास हूँ ।**
**पायो परम विश्राम राम**
**समान प्रभु नाही कहूँ ।।**

करुणा वरुणालय रघुकुल-तिलक श्रीराम जैसा कौन होगा? जिन्होंने एक गीध पक्षी की धूलि को अपनी जटाओं से झाड़ा – ''जटायु की धूरि जटान सों झारी।''

दया अहिंसा का ही एक रूप है। अतएव अहिंसा धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी ने छोटे-से-छोटे जीव पर भी दया करने का उपदेश दिया था। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र की जीवन-दृष्टि प्रदान कर स्व-सत्ता का समर्पण पर-सत्ता के लिये करने की प्रेरणा दी थी।

प्रत्येक धर्म में दया का समादर है। करुणावतार महात्मा बुद्ध का जीवन दया और करुणा से पूर्ण था। उन्होंने देखा कि सारा संसार जन्म-जरा-व्याधि-मरणादि से दु:खी है। प्रत्येक व्यक्ति दु:खों से पीड़ित है। उनका हृदय करुणा से भर गया। उन्होंने संसार के दु:खों की मुक्ति के लिये घोर कष्ट सहा और मुक्ति का उपाय खोजा। भाई देवदत्त के द्वारा आहत पक्षी की रक्षा की। संघाराम में एक बीमार भिक्षु को गरम पानी करके नहलाना, स्वच्छ कपड़े पहनाना और स्वच्छ बिछौने पर सुलाना – उनकी अनुपम करुणा के उदाहरण हैं। उन्होंने एक अवसर पर एक कुष्टरोगी की, जिसके शरीर से दुर्गन्ध आ रही थी, सेवा की। वे बच्चों को भी क्रूरता से दूर रहने की शिक्षा देते थे। एक बार उन्होंने देखा कि कुछ बच्चे एक सूखे पोखरे की मछलियों को सता रहे हैं। उन्होंने उनसे प्रश्न किया – ''तुम इन मछलियों को जिस प्रकार सता रहे हो, यदि उसी प्रकार तुम्हें सताया जाय, तब तुम्हें कैसा लगेगा?'' एक बार उन्होंने कुछ बच्चों को डण्डे से साँप को पीटते हुए देखकर वैसा करने से रोका। उन्होंने भिक्षुओं से कहा था कि जब कोई उन्हें कष्ट से पीड़ित और बीमार मिले, तो उसकी सेवा अवश्य करें। ''वह सेवा मेरी ही सेवा है।''

ईसाई धर्म मानव-सेवा का धर्म है। पवित्र बाइबिल का कथन है कि परमेश्वर की दृष्टि में वही व्यक्ति धार्मिक है, जो गरीब, विधवा तथा अनाथ बच्चों की सहायता करता है। धन के कारण धनियों को सम्मान नहीं देता, गरीबों के फटे वस्त्रों को देखकर घृणा नहीं करता, अपितु सच्चे हृदय से उनसे प्रेम करता है, वही परमेश्वर को प्रिय है। प्रभु यीशु ने एक बार एकत्रित जनसमूह को उपदेश देते हुये कहा था – ''धन्य हैं, वे जो दयावान हैं, क्योंकि उन पर दया होगी।'' एक अवसर पर उन्होंने अपने एक शिष्य को कहानी सुनाई – ''एक पथिक था। डाकुओं ने उसे मारा और लूटा। वह उनकी मार से घायल होकर गिर पड़ा। कई राहगीर उधर से गुजरे। किसी ने उसकी ओर देखा तक नहीं, किन्तु एक ने

उसके घावों को साफ किया, पट्टी बाँधी और उपचार किया। पथिक स्वस्थ हो गया।'' महात्मा ईसा ने शिष्य से पूछा – ''बताओ, कौन-सा व्यक्ति अनुकरणीय है।'' शिष्य ने उत्तर दिया – ''वह, जिसने उस पर दया की।'' यीशु ने कहा – ''तो जाओ, उसी दया को जीवन में उतारो।'' एक बार यीशु से पूछा गया – ''धर्म की पुस्तकों में सबसे बड़ी आज्ञा कौन-सी है?'' उन्होंने उत्तर दिया – ''अपने सभी कार्यों और विचारों से जीवन भर प्रेम प्रकट करना ही सबसे बड़ी आज्ञा है।'' यीशु ने इस आज्ञा को अपने जीवन में चरितार्थ कर दिखाया। उन्होंने न केवल कुष्ठियों और रोगियों को ही स्वस्थ और मृतकों को जीवित किया, अपितु यहाँ तक कि जिन्होंने उन्हें क्रूस पर चढ़ाया, यीशु ने उनके लिये भी परमात्मा से प्रार्थना की – ''हे पिता, इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये जो कर रहे हैं, उसे ये नहीं जानते।'' कितना अद्‌भुत उदाहरण है दया का।[७]

इस्लाम धर्म में भी दया का महत्त्वपूर्ण स्थान है।[८] एक हदीस में लिखा है – ''तुम अल्लाह के बन्दों पर दया करो, तो तुम पर दया की जायेगी। तुम लोगों के अपराध क्षमा करो, तुम्हारे भी अपराध क्षमा किये जायेंगे।'' एक और हदीस में लिखा है – ''जो दया नहीं करता, उस पर दया नहीं की जायेगी।'' एक दूसरे हदीस में हैं – ''दया करनेवाले पर अपार दयालु परमात्मा दया करता है। तुम धरती पर बसनेवालों पर दया करो। तुम पर आकाशवाला दया करेगा।'' इस्लाम, न केवल अपने अनुयायियों पर दया का पाठ सिखाता है, अपितु मनुष्य मात्र ही नहीं, जीवमात्र पर दया करने की सीख देता है। एक हदीस में है – ''किसी व्यक्ति ने प्यासे कुत्ते को, जो अधिक प्यास के कारण कीचड़ चाट रहा था, उस पर दया करके पानी पिला दिया, तो अल्लाह तआला ने उसके इस शुभ कर्म के बदले में उसको जन्नत प्रदान कर दी।''

दया जीवन का रस है। धर्म का प्राण और देवत्व का सोपान है। महात्मा तुलसी के वचन हैं –

**दया धर्म का मूल है, पापमूल अभिमान।**
**तुलसी दया न छाड़िये, जब लगि घट में प्राण ।।**

❖ (क्रमशः) ❖

७. देखे – बाइबिल, नया नियम

८. इस्लाम क्या है?, मौ.मो. मंजूर नोमानी, लखनऊ १९६४

## पुरुषोत्तम नेमा की रचनाएँ

### (१) मातृ-स्मृति

**मैया तू गंगोत्री है। तेरी करुणा**
**– कितनी पावन ! कितनी निर्मल !!**
**तेरी ममता – कितनी सुखदा ! कितनी वत्सल !!**
**तेरी बातें – कितनी निश्छल ! कितनी शीतल !!**
**तीर्थमयी है, तेरी स्मृति,**
**स्मृति – जो जीवन का सम्बल ।।**

### (२) व्यर्थ ढूँढ़ना और कहीं

**शान्ति-प्रेम-सद्‌भाव स्वर्ग है, जीते जी ही और यहीं।**
**परम शान्त स्थिति है यह मन की, ऊपर का कुछ ठौर नहीं,**
**पाते पात्र यहीं पर उसको, व्यर्थ ढूढ़ना और कहीं ।।**

**प्रभु का यह उपकार हृदय को, प्यार और विस्तार दिया,**
**सारा विश्व समाये जिसमें, वह विशाल अँकवार दिया,**
**जितने प्राणी सो सब अपने, इससे बढ़ क्या लाभ कहीं ?**
**शान्ति-प्रेम-सद्‌भाव स्वर्ग है, जीते जी ही और यहीं ।।**

**जीव मात्र के लिये हृदय में, प्रेम भरा है - चाहत भी,**
**सबसे नेह जोड़ लेने की, दे रक्खी है आदत भी,**
**हृदय लबालब 'हाँ' से रहता, 'नहीं' निकलता कभी नहीं।**
**शान्ति-प्रेम-सद्‌भाव स्वर्ग है, जीते जी ही और यहीं ।।**

### (३) दोहा सप्तक

**जहाँ क्रोध तहँ बोध नहिं, जहाँ बोध नहिं क्रोध।**
**क्रोध-बोध दो छोर हैं, जिनमें सहज विरोध ।।**

**चन्दन-केवड़ा-मोंगरा, कुछ दूरी तक गन्ध।**
**देश-काल को लाँघती, शुभ सत्कर्म-सुगन्ध ।।**

**शान्ति और आनन्द का, है हल एक - अवैर।**
**मिट सकता हरगिज नहीं, यहाँ वैर से वैर ।।**

**जगसेवा की ज्योति उर, उठती रहे अमन्द।**
**मानवता ही जाति हो, और गोत्र आनन्द ।।**

**शत्रु-मित्र, क्षति-लाभ में, रहे सदा समभाव।**
**प्रभु चालक हम यंत्र हैं, चलते बिना तनाव ।।**

**जाति-पाँति, दल भेद से, मुझे नहीं कुछ काम।**
**जो करता निरपेक्ष श्रम, मेरा उसे सलाम ।।**

**मानव तन, सत्संग-रुचि, स्वस्थ भक्त परिवार।**
**यथालाभ सन्तुष्टि दी, प्रभु ! तेरा आभार ।।**

❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑

# मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

*डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर*

## (८०) ऐसा होय धर्मरथ जिसका

रणभूमि में रावण जब सुसज्जित रथ पर आरूढ़ होकर श्रीराम के सामने आ पहुँचा, तो विभीषण चिन्तित हो गये। अधीरता के साथ उन्होंने राघवेन्द्र से प्रश्न किया – "अस्त्र-शस्त्रों से लैश रथारूढ़ हो बलशाली लंकेश आ पहुँचा है। आप तो रथविहीन हैं, युद्ध में उससे कैसे पार पा सकेंगे?"

भगवान राम ने शान्ति एवं धैर्य के साथ उत्तर दिया – "मित्र, शौर्य तथा धैर्य ये मेरे रथ के पहिये हैं; सत्य तथा शील दृढ़ ध्वज-पताका हैं; बल, विवेक, संयम तथा परोपकार ये चारों घोड़े हैं; वे क्षमा, दया तथा समतारूपी लगाम से बँधे हैं; ईश्वरभक्ति चतुर सारथी, वैराग्य ढाल तथा संतोष तलवार है; दान फरसा तथा बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है; निर्मल तथा चंचल मन तरकश हैं; मनोनिग्रह तथा यम-नियम बाण हैं और विप्र तथा गुरुजनों की पूजा अभेद्य कवच हैं। ऐसा दृढ़ रथ होने पर शत्रु पर विजय न कर पा सकने की तुम्हारी चिन्ता व्यर्थ है। ऐसा रथ ही विजय दिलाएगा। विभीषण, जो योद्धा ऐसे धर्मरथ पर आरूढ़ होगा, उसके समक्ष विशाल सेना आ जाय, तो भी वह विजय पाने में समर्थ है।"

## (८१) जिस मरने से जग डरे, शूरन के आनन्द

महमूद गजनवी जब सोमनाथ का स्वर्ण मन्दिर लूटकर लौट रहा था, तो उसने सोचा कि राजपुताने को भी क्यों न लूटा जाए और उसने उसी ओर कूच किया। बात जब एक ग्राम के लोगों को मालूम हुई, तो १५० राजपूत इकट्ठे हो गये और उन्होंने महमूद का सामना करने का निश्चय किया। महमूद के ग्राम में प्रवेश करने पर वे लोग उसके काफिले पर हमला करने के लिए आगे बढ़े। महमूद ने मुट्ठी भर ग्रामीणों को देखा, तो वह चकित रह गया कि यह छोटी-सी टुकड़ी उसकी प्रबल सेना का मुकाबला कैसे कर सकती है? उसने उन लोगों को सन्देश भिजवाया – "हमारा रास्ता मत रोको। जानबूझकर स्वयं को आग में क्यों झोंक रहे हो?"

सन्देश सुनकर एक ८५ वर्ष के स्वाभिमानी वृद्ध की भुजाएँ फड़क उठीं। उसने संदेशवाहक से कहा – "जाकर अपने उस निर्दयी बादशाह से कहो कि हम लोग राजपूत हैं। राजपूत अपनी आन-बान-शान-स्वाभिमान के आगे मृत्यु को भी तुच्छ समझते हैं। तुम्हारा महमूद हमारे लिए एक चोर-लुटेरे के सिवा और कुछ नहीं है। जब तक धरती पर एक भी राजपूत जिन्दा है, तब तक वह आगे बढ़ने का ख्वाब न देखे।" महमूद ने जब ये शब्द सुने, तो उसने सैनिकों को आदेश दिया – "इन नापाक लोगों को मौत के घाट उतार दो।" वे लोग राजपूतों पर टूट पड़े। महमूद की प्रबल सेना के सामने उनका टिक पाना असम्भव था, फिर भी उन लोगों ने डटकर मुकाबला किया और वीरगति को प्राप्त हुए। परन्तु उनके शौर्य तथा रणकौशल से महमूद इतना प्रभावित हुआ कि उसे कहना पड़ा – "देश के लिए कुरबानी देनेवाले ऐसे वीर पुरुष जिस देश में हैं, वह देश सचमुच ही धन्य है।"

## (८२) माया बस्य जीव अभिमानी

एक दिन महाराज बिम्बीसार जंगल से जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक साधु दिखाई दिया, जो तुलसी के पौधे को जल चढ़ा रहा था। साधु की निष्ठा देखकर राजा के मन में विचार आया कि कहीं इस साधु के वेश में भगवान ही तो नहीं हैं। फिर दूसरे ही क्षण उसके मन में विचार आया – "नहीं, यह भी तो मेरे ही समान हाड़-मांस वाला मनुष्य है।" जब साधु का ध्यान राजा की ओर गया, तो राजा ने उसे प्रणाम किया। अपना परिचय राजा ने साधु से देकर कहा – "महात्मा, मेरे मन में अभी-अभी एक प्रश्न उठा कि जीव और ईश्वर एक हैं, या उनमें भेद है। क्या आप इसका समाधान करेंगे।"

साधु ने पूछा – "आपको मैं क्या दिखाई देता हूँ?"

"आप फक्कड़ महात्मा हैं" – राजा ने कहा – "आपके तन पर एक लँगोटी है और कुटिया में आसन, कमण्डलु तथा एक अन्य लँगोटी के सिवा कुछ दिखाई नहीं देता।"

साधु ने पूछा – "क्या आप अपने वस्त्र देकर मेरी लँगोटी पहनेंगे?" राजा बोला – "क्यों नहीं !"

दोनों ने अपने-अपने वस्त्र त्यागकर एक-दूसरे के वस्त्र पहन लिये। "अब हम क्या हुए" – साधु ने पूछा। राजा ने उत्तर दिया – "अब आप राजा हैं और मैं साधु हूँ।" साधु कुटिया के अन्दर जाकर दूसरी लँगोटी पहनकर बाहर आया और फिर पूछा – "अब हम कौन हैं?" राजा ने जवाब दिया – "अब आप और हम – दोनों साधु हैं।"

"राजन्, तो आपके प्रश्न का यही उत्तर है।" साधु ने कहा – "जीव और ईश्वर में वस्तुत: कोई भेद नहीं। जो भेद दिखाई देता है, वह माया का है, अविद्या का है, अज्ञान का है। माया ने जीव को जकड़ रखा है। वह जीव को दम्भी अभिमानी तथा अविचारी बना देती है। यदि जीव इनसे मुक्त हो जाय, तो उसे ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं।" ❑❑❑

# सर्वशास्त्रमयी गीता

*कुलदीप उप्रेती, कुमाऊँ, चम्पावत*

श्रीमद्-भगवद्-गीता जगन्नियन्ता भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से नि:सृत महावाणी है। इसलिये ही इसे हिन्दू वाङ्मय में शीर्ष स्थान प्राप्त है। ब्रह्मनिष्ठ ऋषियों ने मानव कल्याण के लिये तीन मार्ग सुझाये थे, जिन्हें 'प्रस्थानत्रयी' के नाम से जाना जाता है। इनमें उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र अधिकारी विद्वानों के प्रस्थान के मार्ग हैं, परन्तु भगवद्-गीता किसी प्रकार की पूर्वापेक्षा नहीं रखती है। इसकी महानता है कि यह किसी भी दशा या दिशा से आये आश्रयग्राही मानव को परम आश्रय प्रदान करती है।

भगवद्-गीता में निबद्ध भगवान श्रीहरि के श्रीमुख से निकले मंगलकारी उपदेश मानव मात्र के लिये परम हितकर हैं। इस ग्रन्थ की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें प्रत्येक मत तथा पथ के अनुयायी के लिये उपयोगी साधन प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। विश्व के सभी प्रमुख धर्मों पर गीता की शिक्षाओं का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। गीता में मानव मात्र को लौकिक स्थिति से क्रमिक रूप से उन्नत कर लोकोत्तर स्थिति तक पँहुचाने के लिये आवश्यक विचार समाहित हैं। इसी कारण प्राचीन व अर्वाचीन भारतीय तथा पाश्चात्य दार्शनिक गीता के प्रति परम लगाव रखते हैं।

शास्त्रज्ञों ने सम्पूर्ण वाङ्मय को प्रधानत: तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। प्रथम – प्रभुभावयुक्त वाङ्मय, द्वितीय – मित्रभावयुक्त वाङ्मय और तृतीय – कान्ताभावयुक्त वाङ्मय। प्रथम श्रेणी में प्रभुभावयुक्त वाङ्मय आते हैं। उनमें वेदों तथा उनके अध्येता का सम्बन्ध स्वामी-सेवक का माना गया है। जिस प्रकार सेवक को स्वामी की प्रत्येक आज्ञा का पालन करना आवश्यक होता है, उसी प्रकार वेदों के पाठक के लिये उसके वाक्यों का पालन भी जरूरी माना गया है।

द्वितीय श्रेणी मित्रभावयुक्त वाङ्मय की मानी गयी है। जिस प्रकार मित्र के वाक्यों, परामर्शों का उपयोग करने पूर्व उसकी परीक्षा कर ली जाती है और उनमें से उपयोगी अंश को ग्रहण करके अनुपयोगी बातों की उपेक्षा कर दी जाती है। इसी प्रकार पौराणिक साहित्य को वेदों की कसौटी के आधार पर उनके ग्राह्य-अग्राह्य का विवेक किया जाना चाहिये।

तृतीय श्रेणी कान्ता भावयुक्त वाङ्मय की है। वेद-स्मृति तथा पौराणिक आख्यानों के अतिरिक्त जो जीवनोपयोगी साहित्य अवशेष बचता है, उसे कान्ताभावयुक्त साहित्य के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। इस साहित्य का उद्‌गम हृदयप्रधान बुद्धि से होने के कारण इससे पाठक की बुद्धि मोहित हो जाती है। जिस प्रकार कान्ता (सुन्दरी) के मधुर हास-परिहास से प्रेमी तत्क्षण अभिभूत हो उठता है, उसी प्रकार ऐसे साहित्य के पाठक की बुद्धि मोहित हो जाती है। ऐसी स्थिति में इसके प्रमाण-अप्रमाण का प्रश्न ही नहीं उठता है।

भगवद्‌गीता को इन तीन श्रेणियों से परे – सर्वोत्कृष्ट श्रेणी (महाभावयुक्त वाङ्मय) के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है। गीता को वेदों से भी उत्कृष्ट माना गया है। वेदों का प्राकट्य ब्रह्माजी के श्वास-प्रश्वासों से हुआ और स्वयं ब्रह्माजी की उत्पत्ति श्रीहरि के नाभि के नाभि-कमल से हुई। भगवान कृष्ण स्वयं जगत्पति सर्वशक्तिमान भगवत्सत्ता हैं। अन्य अवतार उस भगवान के अंश और फलस्वरूप है – **एते चांशकला: कृष्णस्तु भगवान स्वयम्**। भगवती गीता साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण से नि:सृत वाणी है, इसलिये इसका प्रत्येक श्लोक मंत्रमय माना जाता है। इस प्रकार इसमें वर्णित प्रत्येक वाक्य अक्षरश: पालनीय है। सभी वेद शास्त्रों को भगवद्‌गीता की कसौटी पर कसकर ही उनकी ग्राह्यता-अग्राह्यता, प्रमाण-अप्रमाण का विवेक किया जा सकता है। भगवद्‌गीता स्वयं भगवान की वाणी होने के कारण इन सबका अन्तिम प्रमाण है और इन सब में परम सत्य है। गीता के परमोज्जवल आभामण्डल के समक्ष वेदों की ज्योति भी मन्द पड़ जाती है। वेद उपयोगी होते हुए भी गीतारूपी गंगा के विस्तृत जलप्लावन की तुलना में एक विस्तीर्ण ताल के समान ही प्रतीत होते हैं।

गीता के गागर में वेदादि शास्त्रों के ज्ञान का सागर समाया हुआ है। इसमें वर्णित भाषा शैली सरल व सरस होने से जन साधारण के लिये भी ग्राह्य है। सामान्य व्यक्ति भी इसका थोड़ा-सा अभ्यास करके पर सत्य को सरलता से आत्मसात् कर सकता है। भगवान श्रीकृष्ण ने सभी वेद, शास्त्रों, उपनिषदों को मथकर जो साररूप नवनीत निकाला, वह भगवद्-गीता के सात सौ श्लोकों में समाया हुआ है। भगवद्-गीता नर-नारायण का संवाद है, जिसमें परम गुह्य तत्त्व को समान्य जनमानस के समझने योग्य भाषा में क्रमबद्ध ढंग से निरूपित किया गया है, जो अन्य ग्रन्थों में अप्राप्त है। गीता की सरलता एवं सरसता से स्वामी विवेकानन्द भी अत्यन्त प्रभावित थे। स्वामीजी के मतानुसार – ''हम उपनिषदों का अध्ययन करें, तो देखते हैं कि बहुत से असंबद्ध विषयों की भूल-भुलैया में भटकने पर सहसा किसी महान सत्य की चर्चा छिड़ जाती है, ठीक वैसे ही जैसे

किसी विशाल वीरान प्रदेश में किसी यात्री को सहसा यत्र-तत्र अति सुन्दर गुलाब मिल जाता है। जिसकी पत्तियाँ, काँटे, जड़े सभी परस्पर उलझी हुई हैं। उनकी तुलना में गीता इन सत्यों के सदृश है, जो सुन्दर ढंग से यथास्थान व्यवस्थित हैं। वह एक सुन्दर पुष्पमाला के सर्वोत्तम चुने हुए फूलों के एक गुलदस्ते के समान हैं। उपनिषदों में कई स्थलों पर श्रद्धा की विस्तृत विवेचना की गयी है, किन्तु भक्ति का उल्लेख अल्प ही है। दूसरी ओर गीता में भक्ति की बार-बार विवेचना ही नहीं की गयी है, वरन् उसमें भक्ति की अन्तर्निहित भावना चरम उत्कर्ष पर पँहुच गयी है।''

भगवद्गीता एक सार्वभौमिक धर्मशास्त्र है। इसमें वर्णित उपदेशों में प्रत्येक मत तथा पथ के व्यक्तियों के लिये उपयोगी सामग्री मिल जाती है। किसी भी देश या वेश का व्यक्ति हो, जिसने श्रद्धापूर्वक इस ग्रन्थ का अनुशीलन किया है, वह सहज ही इसकी ओर आकृष्ट हुआ है। यही कारण है की अनेक भारतीय व पाश्चात्य मनीषियों ने मुक्तकण्ठ से भगवद्-गीता का गुणगान किया है।

यह एक कालजयी ग्रन्थ है। यह भगवान श्रीकृष्ण की वाङ्मयी मूर्ति है। भगवान स्वयं श्री लक्ष्मी से कहते है –

**शृणु सुश्रोणि वक्षामि गीतासु स्थितिमात्मनः।**
**वक्त्राणि पंचजानीहि पंचाध्यायाननुक्रमात्।**
**दशध्यायान् भुजांश्चैकमुदरं द्वौ पदाम्बुजे।**
**एवमष्टादशध्यायी वाङ्मयी मूर्तिरैश्वरी ।।**

(पद्मपुराण उत्तर.)

– क्रमशः पाँच अध्यायों को पाँच मुख जानो। दस अध्यायों को दस भुजाएँ समझो तथा एक अध्याय को उदर और दो अध्यायों को दोनों चरणकमल जानो। इस प्रकार इसे अठारह अध्यायों की वाङ्मयी मूर्ति समझनी चाहिये।

गीता के सन्देश समय सापेक्ष नहीं हैं। इसके अष्टादश अध्यायों में वाद-विवाद, तर्क-वितर्कवाद के स्थान पर, एक योग्य परीक्षित शिष्य अर्जुन तथा जगदगुरु श्रीकृष्ण का कल्याणकारी संवाद है। इस संवाद को हृदयंगम करने से सहज भाव से अन्तर-बाह्य शान्ति की प्राप्ति होती है, जिसके लिये आज का मानव इधर-उधर भटक रहा है। भगवद्-गीता में प्रत्येक देश-काल तथा परिस्थिति में व्याप्त समस्याओं के समाधान का दर्शन भरा पड़ा है। इसकी इन्हीं विशेषताओं को दृष्टिगत रखते हुए प्रसिद्ध जर्मन विचारक जे. डब्ल्यू. होमर ने इसे 'सर्वकालिक महत्त्व का ग्रन्थ' कहा है।

सुप्रसिद्ध यूरोपीय विचारक एल्डस हक्लसे ने भगवद्-गीता को सम्पूर्ण मानवजाति के लिये उपयोगी बताया है। उनके मतानुसार – ''गीता शाश्वत दर्शन के कभी भी रचे गये सबसे स्पष्ट और सबसे सर्वांग सम्पूर्ण सारांशों में से एक है। इसलिये न केवल भारतीयों, अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के लिये इसका इतना स्थायी मूल्य है। सम्भवतः गीता शाश्वत दर्शन का सबसे अच्छा सुसंगत विवरण है।''

मानव की जीवन-यात्रा में समुचित मार्ग-दर्शन के लिये पर्याप्त आलोक इस गीता ग्रन्थ में मौजूद है। भगवद्-गीता की शिक्षाओं का अनेक महान व्यक्तियों के जीवन-गठन में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। महात्मा गाँधी ने 'यंग इंडिया' में अपने जीवन पर इसके प्रभाव का वर्णन करते हुए लिखा है – ''मुझे भगवद्-गीता में एक ऐसी सांत्वना मिलती है, जो मुझे 'सर्मन ऑफ द माउंट (बाइबिल का पर्वतोपदेश) तक में नहीं मिलती। जब निराशा मेरे सामने आ खड़ी होती है और जब मैं स्वयं को बिल्कुल एकाकी पाता हूँ और मुझे प्रकाश की कोई किरण नहीं दिखाई पड़ती, तब मैं गीता की शरण लेता हूँ। उसमें यत्र-तत्र कोई-न-कोई ऐसा श्लोक मुझे अवश्य दिखाई पड़ जाता है कि मैं उन विषम परिस्थितियों में भी तुरन्त मुस्कराने लगता हूँ – और मेरा जीवन बाह्य विपत्तियों से भरा पड़ा है – और यदि वे मुझ पर अपना कोई दृश्यमान, अमिट चिह्न नहीं छोड़ सकीं, तो इसका सारा श्रेय भगवद्-गीता की शिक्षाओं को ही है।''

अपने देश के भूतपूर्व राष्ट्रपति महामहिम डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम भी भगवद्गीता के दर्शन से प्रभावित रहे हैं। गीता के सन्देश ने उनके जीवन को नवीन दिशा प्रदान की है। राष्ट्रपति बनने से पूर्व २१ जनवरी २००१ को उन्होंने मैसूर के रामकृष्ण मिशन विद्याशाला में छात्रों के समक्ष उन्होंने अपने जो विचार रखे थे, उनका उल्लेख किया जाना समीचीन है। डॉ. कलाम के शब्दों में, ''जब मैं आप लोगों की भाँति तरुण था, उस समय की एक घटना आपको बताता हूँ। चैन्नई के प्रौद्योगिकी संस्थान में प्रवेश लेते समय मैंने विज्ञान विषय चुना था, क्योंकि यह मानव जीवन को समृद्ध बनाता है और विभिन्न तकनीकियों के बीच के सम्बन्ध तथा मित्रता स्थापित करता है। भौतिकी के बाद मैंने उड्डयन अभियांत्रिकी (एयरोनॉटिकल इंजीनियरिंग) को चुना, क्योंकि उस समय मेरी आकांक्षा हवा में उड़ान भरने की थी। मैं पृथ्वी से ऊपर उठना चाहता था। मैंने साक्षात्कार के लिये आवेदन किया और मुझे उसके लिये कार्ड भी मिल गया। वह साक्षात्कार देहरादून में हुआ और वह एक कठिन साक्षात्कार था। उन लोगों ने स्पर्धात्मक भाव से शरीर तथा बुद्धि की परीक्षा ली। कुल मिलाकर बारह प्रत्याशियों की तालिका बनी, जिनमें ग्यारह का चयन होना था। मुझे पता चला कि स्वास्थ्य के आधार पर निश्चित रूप से और भी दो-एक लोगों की छँटनी होगी। दुर्भाग्यवश मैं ही वह प्रत्याशी निकला। बड़ी निराशा तथा उदासी के साथ मैं ऋषीकेश होते हुए लौट पड़ा। वहाँ गंगाजी में स्नान करने के बाद मैंने धोती पहन रखी थी। पास में ही अत्यन्त सुन्दर स्वामी शिवानन्द

जी का आश्रम था। मेरा मन उस आश्रम में जाने आकृष्ट हुआ और मैंने उसमें प्रवेश किया। उस समय वहाँ भगवद्-गीता पर व्याख्यान चल रहा था। प्रतिदिन भजन और प्रार्थना के बाद स्वामीजी चर्चा के लिये श्रोताओं में से ही किसी एक का चयन करते थे। उसी दिन मुझको ही वह अवसर प्राप्त हुआ। मेरे चेहरे पर छाई निराशा तथा दु:ख को स्वामीजी ने देख लिया, मैंने उनसे सारी बातें कह सुनाई गीता से उद्धरण देते हुए मुझे आश्वासन दिया – भयत्रस्त अर्जुन के समक्ष भगवान श्रीकृष्ण ने अपना विश्वास प्रकट किया था। श्रीकृष्ण ने उन्हें 'पराजय पर विजय' पाने का सन्देश दिया। वही मेरे लिये भी एक सन्देश बन गया।''

श्रीमद्-भगवद्-गीता मूलत: 'महाभारत' के अन्तर्गत भीष्मपर्व में ग्रथित है। महाभारत-रूपी महासागर से गीता-रूपी गंगा को पृथक् कर जनमानस के समक्ष प्रवाहमान करने का भगीरथ प्रयास शंकराचार्य जी द्वारा सम्पन्न हुआ। तबसे यह गीता रूपी गंगा अपने आराधकों के लिये तारणहार बनी हुइ हैं। भगवद्-गीता में कुल अठारह अध्याय हैं। जो क्रमश: विषाद योग, सांख्य योग, कर्म योग, ज्ञानकर्म-संन्यास योग, आत्म-संन्यास योग, ज्ञानविज्ञान योग, अक्षरब्रह्म योग, राजविद्या योग, राजगुह्य योग, विभूति योग, विश्वरूप-दर्शन योग, भक्ति योग, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-विभाग योग, गुणत्रय-विभाग योग, पुरूषोत्तम योग, दैवासुर-संपदविभाग योग, श्रद्धात्रयविभाग योग तथा मोक्षसंन्यास योग के नाम से जगद्विख्यात है। जिनमें मानव कल्याण के भाव कूट-कूट कर भरे हुए हैं। गीता में कुल सात सौ श्लोक हैं। जिनमें १ धृतराष्ट्र कथित, ४१ संजय कथित, ८४ अर्जुन कथित तथा सर्वाधिक ५७४ भगवान श्रीकृष्ण द्वारा कथित हैं।

भगवद्गीता परम रहस्यमय अलौकिक ग्रन्थ है। यह ज्ञान का महासागर है, जिसमें ज्ञान रूपी रत्न भरे पड़े हैं। इस महासागर में डुबकी लगाने से श्रद्धालुओं को नित्य नूतन रत्नों की उपलब्धि होती है। गीता को भगवान श्रीकृष्ण ने अपना हृदय, उत्तम सार, अत्युग्र ज्ञान, अव्यय ज्ञान, उत्तम स्थान, परम पद, परम गुह्य तथा परम गुरु कहा है। भगवद्-गीता की महत्ता का मुक्तकण्ठ से वर्णन करते हुए भगवान स्वयं अपने प्रिय भक्त अर्जुन से कहते है – मैं गीता के आश्रय में रहता हूँ, गीता मेरा परम गृह हैं, मैं गीता-ज्ञान का आश्रय लेकर त्रिलोक का पालन करता हूँ।''

**गीता मे हृदयं पार्थ गीता मे सारमुत्तमम् ।**
**गीता मे ज्ञानमत्युग्रं गीता मे ज्ञानमव्ययम् ।।**
**गीता मे चोत्तमं स्थानं गीता मे परमं पदम् ।**
**गीता मे परमं गुह्यं गीता मे परमोगुरुः ।।**
**गीताश्रये तिष्ठामि गीता मे परमं गृहम् ।**
**गीताज्ञानं समाश्रित्य त्रिलोकीपालयाम्यहम् ।।**

(वैष्णवीय तंत्रसारोक्त श्रीमद्-भगवद्-गीता महात्म्य, ४४-४६)

श्रीमद्-भगवद्-गीता परम प्रासादिक ग्रन्थ है, इसका प्रत्येक अध्याय ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र एवं औपनिषदीय ज्ञान के रसामृत से परिपूर्ण है। गीता की तन्मयता से दैनिक पाठ, उस पर चिन्तन-मनन तथा भगवद्-वाक्यों पर श्रद्धा-विश्वास रखकर तदनुसार आचरण करने से कुछ ही समय में व्यक्ति के भाव-स्तर में व्यापक परिवर्तन होकर सही अर्थों में 'मनुष्यत्व' की प्राप्ति होती है, और यही भगवद्गीता का परम प्रसाद तथा मानव-जीवन की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है।

भगवद्गीता की इन्हीं महान् अलौकिक विशेषताओं के कारण इसे सर्वशास्त्रमयी कहा जाता है – **सर्वशास्त्रमयी गीता** (महाभारत)। वेद, पुराण, उपनिषदों व अन्य शास्त्रों की उपयोगी शिक्षाएँ तथा ज्ञान इस ग्रंथ में साररूप में भरा पड़ा है। गीता का अध्ययन करने से अन्य सारे शास्त्रों के तात्पर्यों का अध्ययन स्वयमेव हो जाता है। जिस प्रकार समुद्र-स्नान से सभी तीर्थों के स्नान का फल बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के प्राप्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकार भगवद्गीता-रूपी सागर के अवगाहन से समस्त शास्त्रों के ज्ञान की उपलब्धि स्वत: हो जाती है। गीता-महात्य में इसी सत्य को वर्णित करते हुए महर्षि वेद व्यास ने कहा है –

**गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र संग्रहैः ।**
**या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्-विनिःसृता ।।**

# श्रीरामकृष्ण का आशीर्वाद

*स्वामी गौतमानन्द*

रामकृष्ण मठ तथा मिशन, बेलूड़ मठ के एक न्यासी और रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष स्वामी गौतमानन्दजी महाराज विगत २३ अप्रैल २००७ को विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर में पधारे थे। वहाँ के सभागार में उनका ससम्मान स्वागत किया गया। उक्त अवसर पर आवासीय विद्यापीठ के लगभग ३५० छात्रों को उनके द्वारा दिये गये प्रेरक उद्बोधन को विवेक-ज्योति में प्रकाशनार्थ लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य किया है श्री वीरेन्द्र वर्मा ने। इसके लिये हम उनके तथा विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा के आभारी हैं। – सं.)

इस विद्यापीठ की पिछले कुछ वर्षों के दौरान हुई प्रगति को देखकर लगता है यह सब भगवान श्रीरामकृष्ण और आचार्य स्वामी विवेकानन्दजी की कृपा से ही हुई है। ईश्वर की कृपा का एक कण जिसको मिल जाता है, उसकी उन्नति की सीमा नहीं रहती। एक मिसाल तुम लोगों को देता हूँ।

भगवान श्रीरामकृष्ण का जन्म बंगाल के एक छोटे-से गाँव कामारपुकुर में हुआ था। गाँव में जब वे तुम लोगों के जैसे छोटे बच्चे थे, तब वे प्राइमरी स्कूल में गये। उनका बचपन का नाम था – 'गदाधर'। और उनका एक दोस्त था – यदुनाथ।* गदाधर बड़े हुए और कोलकाता जा पहुँचे। वहाँ पर वे दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर में पुजारी बन गये। कठोर साधना के बाद वे महान् परमहंस हो गये। भगवान श्रीरामकृष्ण परमहंस के रूप में उन्होंने हजारों लोगों को आशीर्वाद दिया। जिन-जिन को उनका आशीर्वाद मिला, वे सभी संसार-सागर से तरकर पार उतर गये। संसार के रहते हुए भी उन लोगों ने बड़े-बड़े ओहदों पर कार्य करते हुए बड़ा सुन्दर जीवन बिताया। यह सब कोलकाता में हुआ।

उनका मित्र यदुनाथ सार्वभौम भी बड़ा हुआ। उसकी शादी हुई और उनका एक छोटा-सा बच्चा था। एक दिन यदुनाथ ने सोचा कि इस छोटे-से होनहार बालक को जीवन में बड़ा आदमी बनना चाहिये, विद्वान् बनना चाहिये। खूब पढ़ना चाहिये। इसको ऐसा आशीर्वाद मिलना चाहिये।''

ऐसा सोचने पर यदुनाथ सार्वभौम को अपने बचपन के मित्र गदाधर की याद आई, जो कोलकाता में ही श्रीरामकृष्ण परमहंस के रूप में रहते थे। उन्होंने सोचा – ''तो क्यों न मैं अपने बच्चे को उन्हीं के पास ले जाऊँ। श्रीरामकृष्ण का आशीर्वाद मिलने से इसको सब कुछ हो जायेगा।''

ऐसा सोचकर वे अपने उस बच्चे को दक्षिणेश्वर श्रीरामकृष्ण के पास ले आये। यदुनाथ श्रीरामकृष्णदेव के दोस्त तो थे ही, अत: उनके आने की सूचना पाते ही श्रीरामकृष्ण अपने कमरे से बाहर आ गये। ''अरे, यदू, तू आ गया'' – कहते हुए उन्होंने उसको आलिंगन किया और पूछने लगे कि कैसे आना हुआ? और यह बच्चा कौन है? यदुनाथ बोले – ''यह मेरा बच्चा है और मैं इसी के लिये आया हूँ।''

श्रीरामकृष्ण पूछा – ''इसके लिये तू यहाँ आया! बोल तो, मैं क्या कर सकता हूँ?'' यदुनाथ बोले – ''तुम इसको अच्छा आशीर्वाद दो, ताकि यह आगे चलकर खूब अच्छा आदमी बने।'' इस पर श्रीरामकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने बालक को प्रभूत आशीर्वाद दिये। श्रीरामकृष्ण ने छोटे बच्चे के सिर पर हाथ रखकर कहा – ''तुम दीर्घायु बनो; बड़े पण्डित बनो।'' उनके इस आशीर्वाद का फल अमोघ था।

यदुनाथ ने पुत्र के लिये एक वर माँगा था, पर श्रीरामकृष्ण ने उसे दो वर दिये – दीर्घायु बनो। खूब लम्बी आयु प्राप्त करो और बड़े पण्डित बनो। धन का आशीर्वाद नहीं दिया। क्योंकि जो बड़ा पण्डित बन जाता है, जिसके पास सरस्वती है, जिसके पास ज्ञान है, उसके पास पैसा तो अपने आप आ जायेगा। सब विद्या चाहते हैं। जिसके पास विद्या है, वह दूसरों को विद्या का दान देकर काफी धन कमा सकता है, नाम-यश आदि सब कुछ पा सकता है। इसलिये श्रीरामकृष्ण ने दो आशीर्वाद दिये – ''दीर्घायु होओ और खूब विद्वान् बनो।'' उसके बाद श्रीरामकृष्ण देव महासमाधि में चले गये।

वह बच्चा बढ़ते-बढ़ते ऐसा विद्वान् बना कि पूरे कोलकाता में संस्कृत के एक बड़े पण्डित रामेन्द्र सुन्दर भट्टाचार्य के रूप में विख्यात हुआ और उसने संस्कृत में 'श्रीरामकृष्ण-भागवतम्' नामक एक महान् ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ को जो भी पढ़ता है, इसके रचयिता की विद्वत्ता पर मुग्ध रह जाता है। इसमें एक ओर तो गहन विद्वत्ता दीख पड़ती है और दूसरी ओर भगवान श्रीरामकृष्ण की महिमा का चित्रण मिलता है। इस प्रकार भगवान श्रीरामकृष्ण के आशीर्वाद से वे एक महान् विद्वान् बन गये। दूसरा आशीर्वाद उन्हें दीर्घायु होने का मिला था। वे आयु का नब्बे साल पार करके, सौ साल तक जिये। इस प्रकार श्रीरामकृष्ण के आशीर्वाद से उन्हें सुदीर्घ, स्वस्थ और सार्थक जीवन मिला। अत: यदि हमें श्रीरामकृष्ण की कृपा मिल जाय, तो हमारी उन्नति की कोई सीमा नहीं रह जाती। कामारपुकुर गाँव का वह लड़का, जो गाँव में अल्प-शिक्षित ही रह जाता, ठाकुर की कृपा से कोलकाता के महान् पण्डित के रूप में विख्यात हुआ।

* यदुनाथ सार्वभौम तथा उनके पुत्र रामेन्द्र सुन्दर भट्टाचार्य पर विस्तृत लेख के लिये देखें – अंग्रेजी मासिक 'प्रबुद्ध-भारत' का २००७ ई. का अगस्त अंक, पृ. ४८८-८९

विवेकानन्द विद्यापीठ के छात्रों को भी भगवान श्रीरामकृष्ण की ऐसी ही कृपा मिल रही है। तुम लोग विज्ञान पढ़ रहे हो, भूगोल पढ़ रहे हो, हिन्दी तथा अँग्रेजी पढ़ रहे हो, और साथ ही तुम श्रीरामकृष्ण और स्वामीजी के प्रति श्रद्धा-भक्ति भी सीख रहे हो। तुममें ऐसा विश्वास हो कि तुम सभी श्रीरामकृष्ण के बच्चे हो। श्रीरामकृष्ण हमारे पिता हैं, हमारी माँ हैं, हमारे सगे हैं और वे हमसे प्रेम करते हैं। हम माँ-बाप से प्रेम करते ही हैं। बच्चों के लिये माँ-बाप से बढ़कर दुनिया कोई नहीं होता और यदि श्रीरामकृष्ण जैसे असाधारण माँ-बाप मिल जायँ, तो तुम उन्हें छोड़ ही नहीं सकोगे। श्रीरामकृष्ण की कृपा से ही तुम लोग यहाँ आये हो। तुम लोगों पर उनकी कृपा बरस रही है और तुम लोग अवश्य आगे बढ़ोगे। तुम लोगों को आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी उन्हीं की है।

हमारे मठ के एक स्वामीजी थे। वे भगवान श्रीरामकृष्ण को मत्स्य-अवतार के रूप में देखते थे। श्रीरामकृष्ण विष्णु और शिव के अवतार थे। उनके पिताजी जब गया के विष्णु मन्दिर में पूजा कर रहे थे, तो वहाँ आशीर्वाद मिला कि मैं तुम्हारे घर में जन्म लूँगा। इधर माता चन्द्रमणि को स्वप्न में दर्शन हुआ कि शिवजी उनके कोख में घुस गये। विष्णु और शिव के समन्वित रूप में, भक्ति और ज्ञान के समन्वित रूप में श्रीरामकृष्ण का आविर्भाव हुआ। परन्तु हमारे एक स्वामीजी श्रीरामकृष्ण को मत्स्य-अवतार के रूप देखते हैं।

विष्णु के दस अवतारों में एक मछली के रूप में ईश्वर की अवतार की कथा है। इस कथा में एक छोटी-सी मछली थी, जो एक ऋषि के कमण्डलु में आ गयी। देखते-ही-देखते वह बहुत बड़ी हो गयी और तब ऋषि ने उसको एक छोटे-से तालाब में छोड़ा। एक-दो दिनों में ही वह उस तालाब जितनी बड़ी हो गयी। तब उसको ले जाकर समुद्र में छोड़ा गया। वहाँ भी वह समुद्र के आकार की हो गयी। तब लोगों को भान हुआ कि भगवान विष्णु स्वयं ही मत्स्य के रूप में आये हैं। ऐसे ही भगवान श्रीरामकृष्ण हैं। ये एक साधारण मनुष्य के समान, कैसे चुपचाप बैठे हैं – मानो घर में हमारे पिता जी बैठे हों। परन्तु उनका स्वरूप वैसा नहीं, अपितु विराट् है। उनके बारे में धीरे-धीरे हम जितना ही सोचेंगे, उतना ही पायेगे कि उनके अन्दर कितनी शक्ति है, कितना आनन्द है, कितनी पवित्रता है! भगवान रामकृष्णदेव की कृपा, उनके नाम पर चलनेवाली सब संस्थाओं में तुम्हारे जैसे पवित्र बच्चों द्वारा होनेवाली प्रार्थनाओं से प्राप्त होगी।

तुम लोगों की सुन्दर प्रार्थना सुनकर बड़ा आनन्द हुआ। श्रीरामकृष्ण कहते थे – भगवान को पाने के लिये उनकी महिमा का गान करो, इससे तुम पर भगवान की कृपा हो जायेगी। तुम लोगों ने प्रार्थना की, भगवान की महिमा गायी – प्रभो, तुम्ही कर्ता हो, तुम्ही सबका पालन कर रहे हो, तुम्हारी कृपा से ही हम सब अच्छे हैं। यही उनकी महिमा का गान है। तुम एक ऐसी विद्या पा रहे हो? ऐसी एक शिक्षा पा रहे हो, जिससे तुम इस दुनिया में बहुत बड़ी तरक्की कर सकोगे। इससे तुम बड़े इंजीनियर बन सकते हो, बड़े डॉक्टर बन सकते हो, बड़े वैज्ञानिक बन सकते हो, बड़े किसान बन सकते हो, बड़े राजनीतिज्ञ बन सकते हो, प्रधानमंत्री तक बन सकते हो। इस दुनिया में तरक्की देनेवाली शिक्षा दी जा रही है। यह सब भगवान श्रीरामकृष्ण की ही कृपा है, जिसके कारण तुम लोगों को तुम्हारे गाँवों से यहाँ लाकर अच्छी शिक्षा दी जा रही है। पहले लगा था कि इन बच्चों को ऐसी शिक्षा देने से न जाने क्या होगा, पर तुम्हारे अच्छे परीक्षा-फल बता रहे हैं कि तुम सब पर ईश्वर की असीम कृपा है।

यह कृपा कैसे आ रही है! स्वामी विवेकानन्द की एक प्रमुख शिक्षा है – आत्मविश्वास अर्थात् अपने ऊपर विश्वास। ऐसा विश्वास कि मैं सब कुछ कर सकता हूँ। यदि विद्या से आत्मविश्वास नहीं मिले, तो वह विद्या किसी काम की नहीं है। हमारी आधुनिक विद्या में यही त्रुटि है। बड़े-बड़े विचारक कहते हैं कि हमारे बच्चों को आत्मविश्वास सिखाना चाहिये।

मैंने अरुणाचल तथा मेघालय प्रदेशों में आदिवासी बच्चों के बीच बीस साल बिताये हैं। रामकृष्ण मिशन ने आदिवासी बच्चों के बीच में आत्मविश्वास पैदा कर दिया है। पहले आदिवासी बच्चे सोचते थे कि वे कभी-भी शहरी बच्चों के बराबर नहीं हो सकते हैं। हमने उनमें यह विश्वास पैदा किया कि तुम न केवल शहरी बच्चों की बराबरी करोगे, वरन् उनसे भी ऊपर उठोगे। पहले उन बच्चों ने विश्वास नहीं किया। हमने प्रतिदिन सुबह की असेम्बली में विवेकानन्द के एक-एक विचार उन्हें पढ़ाया – "आत्मविश्वास रखो, तुम्हारे अन्दर सभी शक्तियाँ हैं। कभी मत कहो कि मुझसे यह नहीं होगा।" दूसरी बात है – "यदि कभी तुम जीतने के लिये गये और हार मिली, तो तुम उस पर दुःख मत करो, क्योंकि हार तुम्हें इसलिये मिली कि तुमने जीतने के लिये पूरा प्रयत्न नहीं किया। तुम्हारे भीतर अनन्त शक्ति है। पूरी शक्ति से प्रयत्न करो, अवश्य जीतोगे।" यही स्वामीजी की सीख है।

हर व्यक्ति में एक अनन्त शक्ति है, दिव्य आत्मा है। हम उस परमात्मा के अंश हैं। हम भी किसी से नहीं हार सकते। हम रामकृष्ण की सन्तान हैं। उनके अंश हैं। हममें हर चीज को जीतने की शक्ति है। स्वामी विवेकानन्दजी के जीवन का एक बहुत बड़ा सन्देश था। वे भारतवासियों को यही सिखाते थे। अमेरिका की एक बड़ी सभा में भी उन्होंने कहा – बोलो – "मैं शिव हूँ! मैं शिव हूँ! मैं परमात्मा हूँ! शिवोऽहम्! शिवोऽहम्!" तब एक महिला उठकर कहने लगी – स्वामीजी आप तो हमें आत्म-सम्मोहन (सेल्फ-हिप्नोटिज्म) सिखा रहे हैं। यह अच्छी चीज नहीं है। मैं जो नहीं हूँ, वह हूँ – ऐसा

कहना तो झूठ है। मैं शिव हूँ – बोलना झूठ है। आप हमे आत्म-सम्मोहन सिखा रहे हैं।'' स्वामीजी बोले – ''मैं आत्म-सम्मोहन नहीं, आत्म-विमोहन सिखा रहा हूँ। तुमने पहले ही अपने को सम्मोहित कर रखा है। जहाँ तुम्हें कहना चाहिये कि मैं ईश्वर की बच्ची हूँ। ईश्वर का अंश हूँ। उसे छोड़कर तुम यही कह-कहकर रो रही हो – 'मैं औरत हूँ, मैं सत्तर साल की हूँ, मैं बूढ़ी हूँ, मैं मरने वाली हूँ'। तुम्हारा जीवन इसी सम्मोहन में बीत रहा है। तुम अपने को समझ नहीं पा रही हो। आत्मा तुम्हारा स्वरूप है। तुम परमात्मा की अंश हो। मैं तुम्हें आत्म-विमोहन सिखा रहा हूँ।''

स्वामीजी का यह सन्देश तुम्हें याद रखना है। वनवासी बच्चों को हम यही सिखाते हैं – तुम सब कुछ कर सकते हो। और इसका फल यह हुआ कि १९८५ ई. में हमारे वनवासी स्कूल की फुटबाल टीम ने अरुणाचल प्रदेश के सभी सात-आठ हाईस्कूलों की फुटबाल टीमों को हरा दिया। इसके फलस्वरूप हमारी टीम को दिल्ली में आयोजित सुब्रत कप फुटबाल टुर्नामेंट में खेलने का आमंत्रण मिला। सुब्रत कप देश के स्कूली बच्चों के लिये आयोजित होनेवाली फुटबाल प्रतियोगिता है। इसमें हर प्रदेश की श्रेष्ठ टीम को आमंत्रण मिलता है। हमारी वनवासी बच्चों की टीम अरुणाचल प्रदेश की ओर से खेलने दिल्ली पहुँची। टुर्नामेंट दिल्ली के अम्बेडकर स्टेडियम में आयोजित था। दिल्ली में आयोजकों के मन में हमारे आदिवासी बच्चों की इस टीम को देखकर उनके प्रति उपेक्षा का भाव पैदा हुआ। ठहरने के लिये हमें एक किनारे का कमरा दिया गया। उनके इस व्यवहार से मुझे दु:ख हुआ, पर हमने सोचा कि खेल के इन दस दिनों में हम दिखा देंगे कि हम कौन हैं! कोने के कमरे में रहने से क्या होता है, पुरस्कार लेते समय तो हम आगे रहेंगे!

कोलकाता के मोहन बागान के श्री सुशील सिन्हा हमारे बच्चों के भी कोच थे और एक माह की विशेष ट्रेनिंग बच्चों को देकर यहाँ लाये थे। जब पहला मैच खेलने को एक दिन बाकी रह गया, तो कोच ने टीम को बुलाकर अभ्यास कराया और अन्त में पूरी टीम से पूछा – ''देखो, कल अमुक टीम के साथ हमारा मैच है। हम लोग जीतेंगे!'' पूरी टीम ने कहा – ''जरूर जीतेंगे, सर।'' हमारी टीम जीती। अगले मैच के पूर्व फिर कोच ने सभी खिलाड़ियों को बुलाकर कहा – ''कल अमुक टीम के साथ मैच है, हमें जीतना है।'' पूरी टीम ने आत्मविश्वास के साथ कहा – ''जरूर जीतेंगे, सर।'' ऐसा नहीं कहा कि जीतने की चेष्टा करेंगे। और दूसरा मैंच भी हमने जीत लिया। तीसरा मैच क्वार्टर-फाइनल और चौथा मैच सेमी-फाइनल भी उन लोगों ने जीत लिया।

हर मैच के पहले उन्हें स्वामी विवेकानन्द के विचारों से प्रेरित आत्मविश्वास का पाठ पढ़ाया गया था। स्वामीजी ने कहा है कि भगवान श्रीरामकृष्ण तुम लोगों पर कृपा करने के लिये आये हैं। तुम लोगों पर उनकी कृपा होगी ही, इसे कोई रोक नहीं सकता। तुम्हें आगे बढ़ना होगा, ऊपर उठना होगा और यह विश्वास रखना होगा कि हम विवेकानन्द विद्यापीठ में पढ़ते हैं, हम स्वामीजी के बच्चे हैं, स्वामीजी के चेले हैं।

हमारे बच्चे पहली बार सुब्रत कप के फाइनल में पहुँचे। फाइनल में बंगाल की एक बहुत अच्छी टीम से हम हारे। हम उस साल रनर रहे। उस पूरे वर्ष देश भर के टी.वी. के क्विज कार्यक्रमों में लोग प्रश्न करते थे कि इस वर्ष सुब्रत मुखर्जी कप में रनर अप कौन-सी टीम रही। हमारे अरुणाचल के वनवासी बच्चों की उस टीम का नाम देश भर में विख्यात हो गया। यह इसीलिये बता रहा हूँ कि श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामीजी की कृपा से तुम सबकी खूब उन्नति होने वाली है। तुम्हें उनके पास आकर, उनके उपदेशों को सुनकर अपने जीवन में उसे उतारने की चेष्टा करनी होगी। उनसे प्रार्थना करनी होगी – हे प्रभो, हम तो आपके बच्चे हैं, आप हम पर कृपा करिये, ताकि हम दुनिया के सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ें, हम बड़े अधिकारी बनें, बड़े व्यापारी बनें, हमारी बहुत तरक्की हो, हम खूब धन कमायें; और हमें जो धन मिले, जो नाम-यश मिले, उसे हम दूसरों की सेवा में लगायें। हमारा धर्म यह नहीं कहता कि हमें धन नहीं कमाना चाहिये। धन कमाओ, लाखों नहीं करोड़ों कमाओ; पर जीवन का उद्देश्य केवल धन कमाना नहीं है, वरन् कमाये हुये धन का अच्छी तरह उपयोग करना है। **श्रिया देयम् ह्रिया देयम् संविदा देयम्** – खूब दान दो। इसमें कोई त्रुटि नहीं है। दान देकर धन को संसार के लोगों की भलाई में लगाओ। श्रीरामकृष्ण अपने भक्तों को कहते थे कि संसार का भी काम होना चाहिये। लोगों का उपकार होना चाहिये, पर साथ ही भगवान को मत भूलो। क्योंकि आखिर में धन-सम्पत्ति से शान्ति नहीं मिलती। सच्ची शान्ति तभी मिलेगी, जब सदैव यह विचार दृढ़ रहेगा कि श्रीरामकृष्ण हमारे पिता हैं, माँ सारदा हमारी माता हैं। वे सदैव हमारे साथ हैं। उनकी स्तुति करना।

ये दो बातें हमें याद रखनी है। हमारे धर्म ने यही आदर्श हमारे सामने रखा है। हमारा धर्म कहता है – मनुष्य को आनन्द तब होगा, जब वह दुनिया में सफल होगा और उसे आध्यात्मिक रोशनी भी मिलेगी। भगवान का दर्शन भी उसे मिलेगा और दुनिया में भी वह आनन्द से रहेगा। दुनिया में आनन्द से रहने को कहते हैं – अभ्युदय और साथ-ही-साथ भगवान का स्मरण सदा रखना चाहिये; इसे नि:श्रेयस कहते हैं। अत: इधर-उधर भटको मत। श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा देवी के जीवन और स्वामी विवेकानन्दजी के सन्देशों को पढ़ो। उनके बारे में चिन्तन करो और खूब आगे बढ़ो। तुम लोगों को कोई रोक नहीं सकता।

## अमेरिकी संसद में रचा गया इतिहास
## वैदिक मंत्रों से कार्यारम्भ

*सलीम रिजवी*

**न्यूयॉर्क** – अमेरिकी संसद में गुरुवार को उस वक्त इतिहास रच गया, जब अमेरिकी संसदीय प्रणाली के इतिहास में पहली बार वहाँ का कामकाज हिन्दू धार्मिक मंत्रों के साथ शुरू हुआ। हालाँकि इस मंत्रोच्चार को उस समय सीनेट में विरोध का सामना भी करना पड़ा, जब सीनेट में मौजूद कुछ लोगों ने इसके विरोध में नारे लगाने शुरू कर दिये।

गेरुआ वस्त्र पहने हुये जब पण्डित राजन जेड सीनेट के मंच पर पहुँचे, तो कुछ लोगों ने नारेबाजी शुरू की, जिसमें वे चिल्ला रहे थे कि यह नहीं होना चाहिये; हम ईसाई है और राष्ट्रवादी भी हैं। पुलिस ने संसद की कार्रवाई में खलल डालने के जुर्म के तीन लोगों को गिरफ्तार भी किया। इनमें एक पुरुष और दो महिलायें शामिल हैं। संसद में हिन्दू धर्म-ग्रन्थों के अंश पढ़े जाने के खिलाफ कई हफ्तों से कुछ ईसाई कट्टरपंथी लोग एक मुहिम चला रहे थे। इसमें ईसाइयों से अपील की जा रही थी कि वे संसद में हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों के पाठ के खिलाफ आवाज उठायें। इन लोगों का तर्क था कि हिन्दू धर्म में कई भगवानों को मान्यता दी जाती है, जो ईसाई धर्म के एक भगवान के सिद्धान्त के खिलाफ है।

**अँग्रेजी में मंत्र** : बाधा की कोशिश के बावजूद पण्डित राजन जेद ने सीनेट में गंगाजल छिड़ककर सर्वप्रथम उसे पवित्र किया, फिर गायत्री मंत्र का जप किया और ऋग्वेद, उपनिषद् तथा गीता से कुछ अंशों के अँग्रेजी अनुवाद पढ़कर अमेरिकी संसद के कामकाज की शुरुआत की। नियम के अनुसार धार्मिक ग्रन्थों के अंशों को सिर्फ अँग्रेजी भाषा में ही पढ़ा जा सकता है। इसलिये सीनेट में पण्डित राजन जेद ने उन मंत्रों का अंग्रेजी अनुवाद ही पढ़ा और 'ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति:' की आवृत्ति से प्रार्थना समाप्त की।

**परम्परा** – १७८९ से ही अमेरिकी सीनेट में यह रिवाज रहा है कि हर दिन सीनेट में काम शुरू होने से पहले प्रार्थना की जाती है, जिसके लिये आमतौर पर ईसाई पादरी बाइबिल के अंश पढ़ते हैं। इसके लिये एक ईसाई पादरी को खास तौर पर सीनेट में नियुक्त भी किया जाता है। लेकिन वर्ष १८५७ से अन्य धर्मों के लोगों को भी समय-समय पर अवसर दिया जाता रहा है कि वे सीनेट का कामकाज शुरू होने से पहले अपने धार्मिक ग्रन्थों से कुछ अंश पढ़ें।

इस पूरी कार्रवाई के दौरान सदन में मौजूद सांसद पूरी लगन और आस्था के साथ इन धार्मिक ग्रन्थों के पाठ को सुनते है और फिर अपने कामकाज में लग जाते हैं। अन्य धर्मों में यहूदी और मुस्लिम धार्मिक गुरुओं को भी अपने धार्मिक ग्रन्थों के अंश पढ़ने की दावत दी जा चुकी है।

पं. राजन जेद हिन्दू धार्मिक गुरु के रूप में पहली बार इस अवसर के लिये चुने जाने पर बहुत खुश नजर आये। उन्होंने कहा – "यह अमेरिका के साथ-साथ हमारे लिये भी एक स्मरणीय दिन है। मेरे और मेरे परिवार वालों के अलावा सारी भारतीय और हिन्दुओं के लिये भी यह एक सम्मान है कि अमेरिका सीनेट में हिन्दू मंत्रों को पढ़ने का मौका मिला।" सीनेट में पढ़े गये इन मंत्रों को अमेरिका संसदीय इतिहास के रिकॉर्ड में औपचारिक रूप से दर्ज भी कर लिया गया है। इससे पहले इसी वर्ष पं. राजन जेद ने नेवादा राज्य की सीनेट और असेंबली में भी हिन्दू ग्रन्थों को पढ़कर राज्य सीनेट और असेंबली में कामकाज की शुरुआत की थी।

### बापू के बार में सोचें

सीनेट के डेमोक्रेटिक पार्टी के नेता श्री हैरी रीड, जिनके निमंत्रण पर पण्डित राजन जद सीनेट में प्रार्थना के लिये आये थे, ने सदन में अपने भाषण के दौरान इस प्रार्थना सभी के विरोध की भर्त्सना करते हुये कहा – "अगर किसी को भारतीयों और हिन्दुओं के बारे में कोई गलतफहमी है, तो वे सिर्फ इतना करें कि महात्मा गाँधी के बारे में सोचें, जिन्होंने शान्ति के अपनी जान तक दे दी थी।" पण्डित राजन जेद ने प्रार्थना का विरोध करनेवालों से अपील की है कि सारे धर्मों के लोग आपस में मिलकर मानवता की भलाई के लिये काम करें। (नई दुनिया, १४ जुलाई, २००७)

# अपील

**रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय**
**पो. बेलूड़ मठ, जिला – हावड़ा (प. बंगाल) ७११ २०२**

प्रिय मित्रो,

स्वामी विवेकानन्द ने भविष्यवाणी की थी कि इस बेलूड़ (मठ) में जो आध्यात्मिक शक्ति प्रकट हुई है, वह १५०० वर्षों तक बनी रहेगी – यह एक महान् विश्वविद्यालय का रूप लेगा। ऐसा मत सोचना कि यह मेरी कल्पना है, मैं इसे प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। एक अन्य अवसर पर उन्होंने लिखा था – 'अब हमारा उद्देश्य है, इस (बेलूड़) मठ को क्रमश: एक सर्वांगीण विश्वविद्यालय के रूप में विकसित करना। बेलूड़ मठ में विश्वविद्यालय की यह विराट परिकल्पना लगभग एक शताब्दी से उनके अनुयाइयों तथा भक्तों के लिये चिन्तन का विषय बनी रही है। भारत सरकार के 'मानव-विकास-संसाधन-मंत्रालय' के 'विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग' कानून की धारा-३ के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त, बेलूड़ में रामकृष्ण मिशन द्वारा सद्य: स्थापित विश्वविद्यालय इस दिशा में एक छोटा-सा कदम है। ४ जुलाई, २००५ को स्वामी विवेकानन्द के निर्वाण-दिवस पर संस्थापित यह नव-विश्वविद्यालय अब अपने अस्तित्व का एक वर्ष पूरा कर चुका है। 'रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय' कई दृष्टियों से अपना अलग वैशिष्ट्य रखता है। अन्य विश्वविद्यालयों से इसकी भिन्नता है –

१. ऐसे कुछ 'मूलभूत' तथा 'उपेक्षित' क्षेत्रों पर बल देना, जिनकी ओर भारत के परम्परागत विश्वविद्यालयों का अब तक ध्यान ही नहीं गया है। २. विश्वविद्यालय का बहु-परिसरीय स्वरूप – यह उन मूलभूत क्षेत्रों में विशेषज्ञ विभागीय केन्द्रों के एक बृहत् नेटवर्क के माध्यम से अपना कार्य करता है। ये केन्द्र भारत के विभिन्न भागों में स्थित रामकृष्ण मिशन की विभिन्न शाखाओं के अंग हैं। इनमें से कुछ केन्द्र उपरोक्त विषयों में दशकों का अनुभव रखते हैं। ३. चरित्र-निर्माण के लिये विश्वविद्यालय द्वारा संचालित प्रत्येक और सभी पाठ्यक्रमों के साथ आवश्यक अंग के रूप में उच्चतर मानवीय मूल्यों का समायोजित करना।

प्रारम्भ में निम्नलिखित महत्वपूर्ण विषय चुने गये हैं – १. विकलांगता व्यवस्थापन तथा विशेष शिक्षा। २. सर्वांगीण ग्रामीण विकास, जिसमें आदिवासी क्षेत्रों का विकास भी सम्मिलित होगा। ३. भारतीय आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक विरासत और आदर्श शिक्षा। ४. आपदा प्रबन्धन, जिसमें राहत और पुनर्वास भी सम्मिलित होगा।

अपने कोयम्बटूर (तमिलनाडु), नरेन्द्रपुर (पश्चिम बंगाल) राँची (झारखण्ड) बेलूड़ (पश्चिम बंगाल) और स्वामीजी के जन्मस्थान तथा पैतृक भवन (कोलकाता) इत्यादि केन्द्रों के माध्यम से हम उपरोक्त विषयों में से प्रथम तीन को आरम्भ कर चुके हैं। वर्तमान में निम्नलिखित पाठ्यक्रम उपलब्ध कराये जा रहे हैं – १. विकलांगता-व्यवस्थापन और विकलांगों (नेत्रहीन, वधिर, तथा मन्द बुद्धि छात्रों के लिये) की शिक्षा – इन विशेष पाठ्यक्रमों में बी.एड., एम.एड., एम.फिल. तथा पी.एच.डी. तक के पाठ्यक्रम। २. सर्वांगीण ग्रामीण विकास और सर्वांगीण आदिवासी-विकास – इन विषयों पर एम.एस.सी. का पाठ्यक्रम। ३. कृषि-आधारित जैव प्रोद्योगिकी विषय में स्नातकोत्तर डिप्लोमा का पाठ्यक्रम। ४. सर्वांगीण आत्म-विकास – ध्यान तथा आध्यात्मिक जीवन, भारतीय संस्कृति तथा आध्यात्मिक विरासत आदि विषय पर डिप्लोमा पाठ्यक्रम। ५. गणितीय विज्ञानों (सैद्धान्तिक भौतिक, शुद्ध गणित, सैद्धान्तिक कम्प्यूटर विज्ञान, दर्शनशास्त्र, रामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा, चेतना आदि) में डॉक्ट्रेट तथा पोस्ट-डॉक्ट्रेट के पाठ्यक्रम।

उपरोक्त विषयों में विशेषज्ञता प्राप्त केन्द्रों में यद्यपि शिक्षण की मूलभूत संरचना विद्यमान है, तथापि उन्हें विश्वविद्यालय स्तर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये काफी कुछ उन्नत करना होगा। अतएव विश्वविद्यालय की मूल संरचना को सुदृढ़ करने तथा इसके भावी विकास के लिये अगले पाँच वर्षों के दौरान हमें लगभग २५ करोड़ रुपयों का एक 'कार्पस-फन्ड' का निर्माण करना होगा। इसलिये हम रामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा के समस्त मित्रों, भक्तों, अनुयाइयों, शुभेच्छुओं तथा प्रशंसकों से अपील करते हैं कि ऐसे एक 'कार्पस-फन्ड' के निर्माण हेतु आप उदारता पूर्वक दान करें।

विवेकानन्द विश्वविद्यालय के लिये निर्दिष्ट धन-राशि भेजते समय कृपया उसके साथ, यह घोषित करते हुये एक पत्र भी भेजें कि यह राशि विश्वविद्यालय के लियें स्थायी-कोष बनाने अथवा चल सम्पत्ति के अधिग्रहण हेतु एक 'कार्पस-फन्ड' (मूलनिधि) बनाने के लिये भेजी जा रही है। चेक अथवा ड्राफ्ट को 'रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द युनिवर्सिटी, बेलूड़ मठ' के नाम बनवाकर निम्नलिखित पते पर भेजें –

**Vice Chancellor, Ramakrishna Mission Vivekananda University**
**Po. - Belur Math, Dt.- Howrah - 711 202 (West Bengal)**

हमें यह सूचित करते हुये हर्ष हो रहा है कि भारत सरकार ने हमारे विश्वविद्यालय को आयकर अधिनियम १९६१ की धारा ८०-जी के अनुसार विश्वविद्यालयों तथा राष्ट्रीय महत्व की शैक्षणिक संस्थाओं पर लागू होने वाले उपधारा २ (a)(iiif) के अन्तर्गत वित्त-मंत्रालय के राजस्व (रेवेन्यू) विभाग द्वारा जारी एक आदेश के तहत आयकर में १०० प्रतिशत की छूट दी है। अतएव विश्वविद्यालय को दिये जाने वाले सारे दान इस आदेश के अनुसार पूर्णत: आयकर से मुक्त होंगे।

मानवता की सेवा में

आपका
***स्वामी आत्मप्रियानन्द***
कुलपति

बेलूड़ मठ
२१ नवम्बर २००६